श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

(नवीन सम्पादित संस्करण)

लेखक

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया

प्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

सासनी - २०४२१६, अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश) भारत

सम्पादन **राकेश जैन शास्त्री, अलीगढ़**

पुनरीक्षण **पवन जैन, अलीगढ़**

प्रथम सम्पादित सस्करण **२००० प्रतियॉं** (दिसम्बर २००४)

पुनरावृत्ति **२००० प्रतियॉं (मङ्गलवार, ०६ फरवरी २००७)**

चतुर्थ वर्षगॉंठ महोत्सव के शुभ अवसर पर प्रकाशित एव प्रसारित

न्योछावर राशि **पच्चीस रुपये मात्र**

प्राप्तिस्थान . / AVAILABLE AT -

IN INDIA (भारत मे)

- ***तीर्थधाम मङ्गलायतन***, सासनी - २०४२१६ अलीगढ (उ०प्र०) भारत
  Email info@mangalayatan com
- **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**, ए-४ बापूनगर जयपुर - ३०२०१५ (राजस्थान)
- **हितेन ए सेठ**, ३०९ वीना विहार सायन (ईस्ट) मुम्बइ ४०००२२
  Email vitragva@vsnl com

IN U S A (अमेरिका मे)

- **HASMUKH M SHAH,**
  304 Tall Oak Trail Tarpon Spring FLORIDA 34688 U S A
  Email Kahanguru@hotmail com
- **JYOTSANA V SHAH,**
  602 Hamilton Ave KINGSTON PA 18704-5622 U S A
  Email jyotsana2@yahoo com

IN U K (इग्लैण्ड मे)

- **PRESIDENT, DIGAMBAR JAIN ASSOCIATION**
  1 The Broadway Wealdstone Harrow MIDDLESEX HA3 7EH, U K
- **SHEETAL V SHAH,**
  Flat 9 Maplewood Court 31 Eastbury Avenue
  Northwood MIDDLESEX HA6 3LL U K
  Email Sheetalvs@aol com

IN KENYA (अफ्रीका मे)

- **PRAFUL D RAJA,** P O Box # 41217 NAIROBI, KENYA
  Email spraja@mitsuminet com

मुद्रक

मङ्गलायतन मुद्रणालय, अलीगढ

प्रकाशकीय

(द्वितीय संस्करण)

तीर्थधाम मङ्गलायतन ने **पण्डित श्री गोपालदास वरैया** द्वारा विरचित **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** का **डॉ किरीटभाई गोसलिया,** फिनिक्स, अमेरिका द्वारा प्रस्तुत अग्रेजी सस्करण **PRIMER OF JAIN PRINCIPLES** पिछले वर्ष अगस्त २००३ मे प्रकाशित किया था, उसको मिले प्रतिसाद से प्रभावित होकर **तीर्थधाम मङ्गलायतन** ने इसके नवीन सम्पादित हिन्दी सस्करण को प्रकाशित करने का निर्णय लिया और **मङ्गलायतन** पञ्च कल्याणक की **द्वितीय वर्षगॉठ २००४** के अवसर पर इसे प्रसारित किया. इसी की पुनरावृतित पुन चतुर्थ वर्षगॉठ. २००७ के शुभ प्रसङ्ग पर करते हुए हमे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

पिछले बहुत समय से **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** के प्रकाशन की आवश्यकता महसूस हो रही थी। यद्यपि कुछेक वर्षो पूर्व सन् १९८८ मे इसे प्रकाशित करने का बीडा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ न उठाया और इसके दो सस्करण जल्दी जल्दी प्रकाशित भी किये गये। उसी शृङ्खला मे **तीर्थधाम मङ्गलायतन** ने इसका **नव-सम्पादित सस्करण** प्रकाशित किया है।

इस कृति एव कृतिकार के सम्बन्ध मे यदि वरिष्ठ विद्वान **स्व डॉ. दरबारीलाल कोठिया, वाराणसी** के शब्दो मे कहे तो —

"**आचार्यकल्प पण्डित आशाधरजी, पण्डित राजमलजी और पण्डित टोडरमलजी आदि विद्वद्वरेण्यो ने जैन तत्त्वज्ञान की उपलब्धि और प्रसार के लिए जो कार्य किया, वही गुरु गोपालदासजी ने भी किया है। उनकी अद्भुत प्रतिभा, असाधारण निष्ठा और अद्वितीय चारित्र की त्रिवेणी, उनके पद-चिह्नो पर चलनेवालों के कल्मष को चिरकाल तक प्रक्षालन करती रहेगी।**"[१]

---

१ गुरु गोपालदास वरैया स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ३०२

स्व गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया के हम हृदय से आभारी है, जिन्होंने ऐसी अमूल्य रचना जैन जगत् को समर्पित की। इस कृति का मूल्याङ्कन, इस बात से ही जाहिर होता है कि यह कृति भारत तथा विश्व के अनेक परीक्षाबोर्डों मे भी मान्यता प्राप्त है। **हमारा ऐसा मानना है कि इस कृति को अच्छी तरह समझे बिना जिनागम को तथा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को समझना अत्यन्त कठिन है।**

लौकिकज्ञान के भी प्रत्येक क्षेत्र मे अपने-अपने विषय के पारिभाषिक शब्दकोश होते है, जिनसे उन-उन विषयो मे प्रवेश करना सरल हो जाता है। जिन-सिद्धान्त और जिन-अध्यात्म के क्षेत्र मे भी ऐसी ही पारिभाषिक शब्दकोश की रचना अनिवार्य है, जिसकी पूर्ति लेखक ने की है। इसके एक-एक प्रश्न मे जैन तत्त्वज्ञान का भरपूर खजाना भरा हुआ है और इसे जैनदर्शन का MINI ENCYCLOPEDIA (लघु पारिभाषिक शब्दकोश) भी कह सकते है। विशेष विद्वानो से निवेदन है कि इस कृति को आधार बनाकर जैनधर्म का वृहद् पारिभाषिक कोश भी तैयार करे।

मेरा यह सौभाग्य है कि मैने इस सम्पादित कृति का अपने निजी स्वाध्याय हेतु पुनरीक्षण किया है। इसी प्रकार ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** पण्डित गोपालदासजी वरैया द्वारा रचित **श्री जैन सिद्धान्त दर्पण** को प्रकाशित कर रहा है। यह आठ अधिकारो मे विभाजित है और इसमे द्रव्यानुयोग के साथ साथ गोम्मटसार लब्धिसार, क्षपणासार आदि ग्रन्थो के आधार पर करणानुयोग के विषय का भी विवेचन किया गया है। इसीप्रकार वरैयाजी के अनेक लेख भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। उन सभी का सङ्कलन करके प्रकाशन करना योग्य है।

इस कृति को प्रकाशित करने का सम्पूर्ण आर्थिक भार अग्रेजी सस्करण के सम्पादक **डॉ. किरीट गोसलिया, फिनिक्स, अमेरिका** की धर्मपत्नी **श्रीमती विभूति गोसलिया** ने वहन किया है। एतदर्थ सस्था उनका बहुत-बहुत आभार प्रगट करती है।

- **पवन जैन**, विशेष सचिव

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ

ॐ

तीर्थधाम मङ्गलायतन

(संक्षिप्त परिचय)

शाश्वत शरण तुम्हारा हो, फिर चाहे जगत किनारा हो।
भव-भव में तुझ दास रहूँ, बस तू आदर्श हमारा हो॥

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, तद्भक्त बहनश्री चम्पाबेनसहित समस्त ज्ञानी-महात्माओ के पुण्य प्रभावनायोग और विश्वभर के समस्त साधर्मी बन्धुओ के सहयोग से निर्मित **तीर्थधाम मङ्गलायतन**, सत्य के साधको की साधनाभूमि है। यह किसी व्यक्ति विशेष का नहीं है, यह तो जन-जन का है। यह जन-जन को वीतरागता का सन्देश देने के लिए कटिबद्ध है। यह अहिसा के सन्देश को विश्व के कोने-कोने तक पहुँचाएगा। यह सत्यवाणी को, पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को जन-जन तक पहुँचाएगा। यह जैनधर्म के विलुप्त हो रहे गौरव को पुनर्स्थापित करेगा। यह जन-जन को सत्य, अहिसा, अचौर्य, सदाचार, श्रावकाचार, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पाठ पढाएगा।

मङ्गलायतन, प्रेम का, मित्रता का, विकास का, शान्ति का और वीतरागता का सन्देश देगा। यह सुख-शान्ति देने मे किसी प्रकार का भेदभाव नही करेगा। यह अपने उपासको के लिए भी मङ्गलरूप होगा और निन्दको के लिए भी मङ्गलरूप ही होगा। जो उसे देखकर हर्ष प्रकट करेगे, उनके लिए भी यह मङ्गलरूप मोक्षमार्ग प्रशस्त करेगा और जो उसे देखकर रोष करेगे, उन्हे भी यह सन्मार्ग पर लाने का प्रयास करेगा।

तीर्थधाम मङ्गलायतन का निर्माण श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ द्वारा हुआ है। इस ट्रस्ट की स्थापना १७ जुलाई २००० को हुई थी। इस सकुल का नामकरण, पञ्च परमागमो के

गुजराती अनुवादक स्वर्गीय पण्डित हिम्मतलाल जेठालाल शाह ने ०८ अगस्त २००० को स्वर्णपुरी-सोनगढ मे किया था।

तीर्थधाम मङ्गलायतन का शिलान्यास २७ दिसम्बर २००० को तत्कालीन केन्द्रीय मानव ससाधन मन्त्री माननीय डॉ० मुरलीमनोहर जोशी एव उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री माननीय श्री राजनाथसिह की उपस्थिति मे लगभग १० हजार साधर्मी भाई-बहिनो ने किया था तथा मात्र २५ माह की अल्पावधि मे यह तीर्थधाम पूर्णता को प्राप्त हुआ यह सर्वत्र आश्चर्य का विषय आज भी है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की प्रतिष्ठाविधि, ०६ फरबरी २००३ को श्रीमहावीरस्वामी दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के माध्यम से सम्पन्न हुई। जबकि उसका उद्घाटन देश- विदेश से पधारे हजारो साधर्मी भाई-बहिनो एव विद्वानो की उपस्थिति में भारत के तत्कालीन उपप्रधानमन्त्री माननीय श्री लालकृष्ण अडवाणी ने किया था।

तीर्थधाम मङ्गलायतन, आज एक जाना- पहचाना विश्वविश्रुत तीर्थ बन चुका है। ८० हजार वर्गगज के विशाल भूखण्ड पर निर्मित **तीर्थधाम मङ्गलायतन** मे कृत्रिम कैलाशपर्वत पर निर्मित भगवान श्री आदिनाथस्वामी जिनालय, भगवान श्री आदिनाथ मानस्तम्भ, भगवान श्री महावीरस्वामी जिनालय एव भगवान श्री बाहुबलीस्वामी जिनालय के अतिरिक्त पण्डित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर, आचार्य समन्तभद्र आत्मचिन्तनकेन्द्र, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, धन्य मुनिदशा (मुनिवन), सत्साहित्य विक्रयकेन्द्र, भगवान महावीरस्वामी धर्मार्थ ओषधालय (नवीन भवन), विजयलक्ष्मी भोजनशाला, चैतन्य बसेरा एव मङ्गल बसदि नामक अतिथिनिवास का निर्माण हो चुका हे। आगामी चरण मे आचार्य कुन्दकुन्द शोधसस्थान, मङ्गल आवास, मङ्गल जलाशय, मङ्गल छत्रछाया, कहाननगर, आचार्य कुन्दकुन्द जीवनगाथा मन्दिर आदि मङ्गल आयतनो का निर्माण प्रस्तावित है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन मे प्रवेश करते ही मुख्यद्वार की बायी ओर सम्पूर्ण विश्व मे पहली बार **धन्य मुनिदशा प्रकल्प** (मुनिवन) की कृत्रिम

रचना की गई है, इसमे आपको चलते-फिरते सिद्धो के समान नग्न दिगम्बर जैन साधु के साक्षात् दर्शन होगे। इस **धन्य मुनिदशा प्रकल्प** मे -

★ कैसे कोई व्यक्ति वैराग्य पाकर मुनि बनने की भावना करता है ?

★ कैसे वह माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करता है ?

★ कैसे वह दीक्षा-प्रदायक आचार्य के समीप जाकर दीक्षा की प्रार्थनापूर्वक दीक्षा अङ्गीकार करता है ?

★ कैसे वह निर्विकल्प ध्यान करने हेतु सामायिक करता है ?

★ कैसे वह छेदोपस्थापना चारित्र के अन्तर्गत २८ मूलगुणो को ग्रहण करता है ?

★ कैसे वह दिन मे एक बार खडे-खडे अपने करपात्र (हाथो) पर ही रखकर अल्पाहार करता है ?

★ कैसे वह जनसमुदाय को उपदेश देकर सम्बोधित करता है ?

★ कैसे वह मुनिराज कल्याणकारी शास्त्ररचना करता है ?

★ कैसे वह उपसर्ग-परीषहो को समताभाव से सहन करता है ?

★ कैसे वह समाधिपूर्वक सल्लेखना-मरण स्वीकार करता है ?

★ कैसे मुनिराज क्षपकश्रेणी पर आरोहण करते है ?

★ कैसे मुनिराज अविनाशी केवलज्ञान प्राप्त करते है ?

★ कैसे पदमानन्दमय सिद्धदशा की प्राप्ति करते हैं ?

- इस प्रकार इस मुनिवन मे मुनिदशा के जीवनचरित्र को साक्षात् आदमकद मूर्तियो के द्वारा दर्शाया गया है। यहाँ 'लाइट एण्ड साउण्ड' के माध्यम से प्रत्येक दृश्य का सम्पूर्ण वृतान्त भी बताया जाता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में पाषाणनिर्मित जिनायतनो के साथ-साथ, जीवन्त मन्दिरो के निर्माण की प्रक्रिया भी **भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन** के माध्यम से मूर्तरूप ले रही है। सम्यग्दर्शननिलय, सम्यग्ज्ञाननिलय और सम्यक्चारित्रनिलय के नाम से निर्मित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के **रत्नत्रयनिलय** मे, छात्रो को उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। हमारा उद्देश्य स्वस्थ,

स्वावलम्बी, चारित्रवान एव सस्कारी युवक तैयार करना है, जो निस्वार्थभाव से आत्मकल्याण के साथ-साथ वीतराग धर्म का प्रचार प्रसार कर सके।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा सितम्बर २००१ से '***मङ्गलायतन***' नामक मासिक पत्रिका का निरन्तर प्रकाशन किया जा रहा है। वर्तमान मे विशेषाङ्को की विशेष शृङ्खला प्रारम्भ करके '***मङ्गलायतन***' पत्रिका के प्रत्येक अङ्क को साधर्मियो के द्वारा सङ्कलन योग्य अविस्मरणीय स्वरूप प्रदान किया गया है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन के **आचार्य समन्तभद्र आत्मचिन्तन केन्द्र** के दोनो कक्षो के बीच मे एक विशाल कक्ष मे 'स्ट्रॉग रूम' बनाकर **पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र** स्थापित किया गया है, इसमे सैकडो-हजारो वर्ष प्राचीन ताडपत्र एव कागज के हस्तलिखित जैन शास्त्रो का सग्रह एव सरक्षण किया जाता है। इसके अन्तर्गत विशेष आधुनिक विधियो से मूल हस्तलिखित ग्रन्थो की पाण्डुलिपियो की साफ-सफाई, रासायनिक विधि से सरक्षण, डिजिटल कैमरो के द्वारा उनकी कॉपियॉ तैयार करना, उनका सूचीकरण करना आदि शामिल है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन एव **श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर** के सयुक्त तत्त्वावधान मे यह सरक्षण केन्द्र सञ्चालित है। इस केन्द्र को **भारत सरकार** के **राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन** एव **आरकाईव्ज** की ओर से मान्यता भी प्राप्त है। अब तक हम ३२०० से अधिक पाण्डुलिपियो के लगभग ०६ लाख पृष्ठो को सरक्षित कर चुके हैं। इस केन्द्र के माध्यम से अनुपलब्ध प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थो का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

अत्यन्त प्राचीन चित्रकला को सुरक्षित करने के उद्देश्य से लगभग १५०० दुर्लभ चित्रो का सरक्षण भी किया जा चुका है। इन्हे अत्यन्त सुन्दर प्रदर्शनियो के माध्यम से पञ्च कल्याणको आदि विशेष अवसरो पर प्रदर्शित भी किया जाता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन मे आचार्यो और ज्ञानीजनो द्वारा रचित तथा चार अनुयोगो के रूप मे प्रकाशित- अप्रकाशित, हस्तलिखित एव ताडपत्रो

पर अङ्कित जिनवाणी की स्थापना के सम्यक् ध्येय से **कविवर पण्डित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर** का निर्माण किया गया है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन ने पञ्च परमागमो के हिन्दी पद्यानुवाद की सङ्गीतमयी प्रस्तुति, प्राचीन कवियो के भजन, देवभक्ति-गुरुभक्ति-जिनवाणीभक्ति, मङ्गल कथाओ, मङ्गल बोधिकथाओ की मधुर भक्तिरस से ओतप्रोत सी०डी०, वी०सी०डी०, डी०वी०डी० एव ऑडियो कैसेट तैयार किये हैं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की ओर से **साधना चैनल** पर भी प्रतिदिन आधे घण्टे तक प्रवचन, सास्कृतिक कार्यक्रम, **मङ्गलायतन** की वीडियो फिल्म आदि का प्रसारण होता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की चारो दिशाओ मे उत्तरप्रदेश सरकार ने तीन किलोमीटर क्षेत्र को शामिल कर, **विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण** (Special Area Development Authority - 'SADA') के गठन की घोषणा की है। इसके गठन से **तीर्थधाम मङ्गलायतन** का चतुर्मुखी समग्र विकास सुनिश्चित है। विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण ने विधिवत् गठन के बाद इस क्षेत्र मे मॉस- मदिरा की बिक्री व अवाछनीय निर्माण आदि पर स्वत ही रोक लग जायेगी।

सम्पूर्ण विश्व मे पहली बार जैन समाज को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि सम्पूर्ण दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज के सहयोग से अलीगढ मे '**मङ्गलायतन विश्वविद्यालय**' का सञ्चालन किया जा रहा है, यह अत्यन्त सम्मान की बात है कि इस विश्वविद्यालय का नाम **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के नाम से ही रखा गया है - यह विश्वविद्यालय पृथक् सस्थान द्वारा सञ्चालित किया जा रहा है।

मङ्गलायतन विश्वविद्यालय की स्वीकृति उत्तरप्रदेश सरकार के द्वारा माननीय राज्यपाल महोदय से हस्ताक्षरित होकर ३० अक्टूबर २००६ को '**मङ्गलायतन विश्वविद्यालय** एक्ट' पारित करके एव स्वय सरकार द्वारा 'गजट' प्रकाशित करके प्रदान की जा चुकी है, इसी वर्ष जुलाई, २००७

से यह विश्वविद्यालय अपना कार्य प्रारम्भ कर देगा। इस विश्वविद्यालय मे शताधिक विषयो पर डिग्री-डिप्लोमा कोर्स का अध्ययन कराया जाएगा। एतदर्थ २ ५ लाख वर्गफुट का निर्माणकार्य चार चरणो मे पूरा किया जाएगा। विश्व के सुप्रसिद्ध इजीनियरो के सहयोग से निर्मित यह विश्वविद्यालय सम्पूर्ण विश्व मे आकर्षण का केन्द्र होगा, विश्व की अनुपम कलाकृति होगी।

नैतिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक मानदण्डो पर भी यह विश्वविद्यालय कीर्तिमान स्थापित करेगा। लौकिक शिक्षा के क्षेत्र मे भी जैन तत्त्वज्ञानप्रधान शिक्षा को महत्त्व प्रदान किया जाएगा। इस सस्थान का अल्पसख्यक स्वरूप भी जैनधर्म एव जैनसमाज के लिए अवश्य ही लाभदायी होगा, जिसके अन्तर्गत जैन छात्रो एव निर्धन छात्रो के लिए विशेष प्रावधान होगे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा सञ्चालित अनेकानेक परोपकारी योजनाओ मे अथवा तीर्थधाम के सम्यक् सञ्चालन, निर्माण, रख-रखाव के लिये आपके सहयोग की आवश्यकता है। आप अपनी भावनानुसार कोई भी राशि दान मे दे सकते हैं। आपसे अनुरोध है कि ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** के पुन पुन दर्शन करने हतु अवश्य पधारे।

प्रस्तुत पुस्तक की न्योछावर राशि कम करने हेतु प्राप्त सहयोग

1 श्री गुप्तदान, फरीदाबाद (हरियाणा) 11001/
2 श्री जैन नैतिक शिक्षा समिति, लश्कर ग्वालियर (म०प्र०) 1000/-
3 श्री मागीलाल अशोककुमार जैन, गुना (म०प्र०) 605/
4 स्व० प्रतापचन्द जैन, झालरापाटन (राज०) 501/
5 सौ प्रेमलता, धर्मपत्नी श्री एस०वी० जैन इन्दौर (म०प्र०) 501/
6 सौ पानादेवी, धर्मपत्नी श्री मोहनलाल सेठी जयपुर (राज०) 500/-
7 श्रीमती त्रिशला जेन मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) 500/
8 श्री एन० सी० जैन सुशीला जैन, रतलाम (म०प्र०) 300/-
9 श्री रविन्द्रकुमार सोगानी, जयपुर (राज०) 251/-

- पण्डित अशोक लुहाड़िया शास्त्री
निर्देशक ***तीर्थधाम मङ्गलायतन***, अलीगढ

II Om Namah II

A MESSAGE TO ALL READERS

We owe our respect and reverence to Dr Kirit Gosalia First, he studied, taught himself, and developed a great personal faith in the principles of Jainsim Then, and only then, did he devote the long hours of personal dedication necessary to translate this great work into English, so that the many of us who can not read the original language might learn and gain eternal bliss **One's spiritual awakening is the most essential event in one's life - perhaps, the sole purpose for being**

This writer was privileged to read each draft of the English translation, to comment on the original manuscript, and, to suggest changes Readers who are already familiar with the philosophy of Jainism and who are aware of its exceptional depth of thought and scholarship understand the need for careful, **concentrated study to master its tenets and to further achieve their own personal state of enlightenment**

As one who has devoted his life to teaching, it is to the English speaking reader, and especially to those students who desire to learn the principles of Jainism, to whom these thoughts are addressed My fellow readers, this is a work which requires much self-discipline and intense concentration to understand how to apply its tenets to your own lives It is not a work to be read quickly nor to be taken lightly - it is to be savored, thougth about, discussed, and savored anew **Young readers must be prepared to be patient, to seek wisdom, to ask questions of thier own, and, yes, at times to avoid frustration and to perservere Remember, to bring your own faith in Jainism to fruition requires a life-long endeavor**

Now, as you approach this work, be prepared to put yourself into the role of asking each of the several hundred questions and then to listening and absorbing the answers given to each Before you begin this remarkable task, I urge you first to study Dr Gosalia's orientation to this translation As one who has both

studied and taught world religions, I assure you that his introductory orientation and his translation will provide each reader with a faithful, comprehensive insight into the philosophy of Jainism **I also urge each reader to use the tables at the end of this work as a significant means for reviewing the principles of Jainism**

Your most honoured servant,
Melvin W Donaho, Ph D.

SHRI JAIN SIDDHANT PRAVESHIKA

(AN ENGLISH VERSION)

Shri Jain Siddhant Praveshika is written in such a readable style that anyone should be able to understand the basic Jain principles. Since I was able to significantly further my own knowledge about Jainism through this book I was motivated to attempt an English translation of this work It is hoped that a translation will be an invaluable tool for the English-speaking children of the western world and India, who are studying Jainism Initially the scope of the work overwhelmed me, however I was ecnouraged by friends to pursue the project

In fact, at the completion of the translation, my personal belief in the principles of Jainism was further enhanced For a beginning student, this English translation will provide a much clearer vision of the fundamentals of Jainism *The utmost care has been taken* in this translation to maintain the intergrity of the original text In a very few places, I have taken the liberty to expand the text of convey in English, the true intention of Baraiyaji

- Kirit Gosalia, M.D.
Phoenix, Arizona U S A Email digjain@aol com
(From Primer of Jain Principles, Page V)

प्रस्तावना

वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा की सर्वाङ्ग से नि सृत ॐकारमयी दिव्यध्वनि को सुनकर सम्पूर्ण श्रुतज्ञान के धारक गणधरदेव द्वादशाङ्ग की रचना करते हैं। इन द्वादशाङ्ग के पदो की सख्या के विवरण को देखकर ज्ञात होता है कि यह द्वादशाङ्ग अत्यन्त विपुल प्रमाण मे रचित होता है।

वर्तमान उपलब्ध जिनागम एक विशिष्ट शैली 'चार अनुयोग' मे निबद्ध है - प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग। इन चारो अनुयोगों मे जैनदर्शन-सम्मत सैद्धान्तिक शब्दो का विपुलता से प्रयोग हुआ है। इन सैद्धान्तिक शब्दो की परिभाषाएँ भी जिनागम मे यत्र-तत्र उपलब्ध है, परन्तु इन सभी सैद्धान्तिक शब्दो को एक जगह एकत्रित करके उनका उचित क्रम मे सङ्कलन करना, अपने आप मे एक महान श्रमसाध्य काम है।

आज मे लगभग ७० ८० वर्ष पूर्व इस युग के प्रकाण्ड विद्वान **गुरुना गुरु, स्वनामधन्य, गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया** ने इस काम का बीडा उठाया और अपनी सङ्कल्प शक्ति के बल पर यह **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** तैयार की।

ग्रन्थकार : संक्षिप्त जीवनवृत्त

गुरुवर्य श्री पण्डित गोपालदास वरैया, उन गौरवशाली व्यक्तित्वो मे है, जिनका वृहद्काय अभिनन्दन ग्रन्थ (६२८ - ४४ = ६७२ पृष्ठ) उनके मरणोपरान्त ५० वर्ष बाद अर्थात् आज से ३७ वर्ष पूर्व सन् १९६७ मे प्रकाशित किया गया था। उसके आधार पर उनका सक्षिप्त जीवनवृत्त यहॉ दिया जा रहा है।

भारत के इतिहास मे अनेक महापुरुष अवतरित हुए है, जिन्होने जनसामान्य के मन मस्तिष्क पर अपने उज्ज्वल चरित्र और आदर्श जीवन की अमिट छाप छोडी है। पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया उन्ही मे से एक है, उनके

बलिदान, त्याग और सेवाओ की लम्बी फेहरिस्त (सूची) है, जो देश और समाज के प्रति उनके उल्लेखनीय योगदान की गवाही देती है। यही कारण है कि जैन समाज को आज भी उन पर नाज है, गौरव है।

बालक गोपालदास का जन्म भारतदेश के उत्तरप्रदेश प्रान्त के आगरा शहर मे सन् १८६७ अर्थात् वि स १९२३, चैत्र कृष्ण द्वादशी के दिन, वरैया जातिज और एछिया गोत्रज लाला लक्ष्मणदास जैन के परिवार मे हुआ था। राजस्थान के अजमेर शहर मे उनका परिचय एक जैन सद्गृहस्थ, स्वाध्यायी श्री मोहनलाल जैन की प्रेरणा से जैन साहित्य से हुआ, तभी से उनके जीवन मे एक बडा परिवर्तन हुआ और उनकी जैनधर्म के प्रति आस्था वृद्धिङ्गत होती गयी।

आपने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बल पर बिना गुरुगम के जैनदर्शन के अनेको ग्रन्थो का अध्ययन, और उनके रहस्यो को हृदयङ्गम किया। यद्यपि पञ्चाध्यायी आदि कुछ ग्रन्थों को पढने मे उन्होंने पण्डित श्री बलदेवदास, आगरा का सहयाग लिया था, तथापि अधिकाश ग्रन्थो का अध्ययन उन्होंने स्वयमेव किया।

सस्कृत एव अर्द्धमागधी भाषा के प्रति उपेक्षाभाव देखकर उन्हे अत्यन्त पीडा का अनुभव हुआ और उन्होने मुरैना (मध्यप्रदेश) मे एक **जैन संस्कृत विद्यालय** की स्थापना की। उसके माध्यम से उनकी शिष्य परम्परा मे अनक उच्चकोटि के विद्वान् तैयार हुए है, जिनमे से कुछ नाम निम्न है —

श्रीयुत क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी श्री नाथूराम प्रेमी, पण्डित फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, पण्डित जगन्मोहनलाल शास्त्री, पण्डित कैलाशचन्द सिद्धान्तशास्त्री, पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य, डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री ज्योतिषाचार्य, पण्डित माणिकचन्द कौन्देय, पण्डित मक्खनलाल शास्त्री, पण्डित देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री, पण्डित वर्धमान शास्त्री, पण्डित बशीधर व्याकरणाचार्य, पण्डित मुन्नालाल राधेलीय, डॉ हुकुमचन्द भारिल्ल, पण्डित रतनचन्द भारिल्ल आदि।

डॉ हुकुमचन्द भारिल्ल द्वारा निर्देशित और पण्डित रतनचन्द भारिल्ल के प्राचार्यत्व मे सञ्चालित **श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, तीर्थधाम मङ्गलायतन** मे सञ्चालित **भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन** और बाँसवाडा मे सञ्चालित **श्री अकलङ्कदेव शिक्षण संस्थान** भी इसी शृङ्खला की कडियॉ है। जहॉ से सैकडो की सख्या मे विद्वान् तैयार हो रहे है और हजारो की सख्या मे निकट भविष्य मे तैयार होंगे।

जैन साहित्य के अध्ययन हेतु उन्होने **श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालय** की स्थापना भी की और नि स्वार्थ भावना से उन्होने शिक्षा, साहित्य और सास्कृतिक चेतना को जागृत करने मे अपनी महती भूमिका अदा की। उन्होंने खुले दिल मे जैनधर्म और दर्शन की प्रभावना हेतु देशभर मे स्वाध्याय की प्रवृत्ति चलाकर प्रचार-प्रसार किया।

उनकी बुद्धिमत्ता और धर्म के प्रति रुझान को देखकर जैन समाज ने उन्हे अनेक उपाधियों से सम्मानित किया। जैसे - स्याद्वादवारिधि, वादीगजकेसरी, न्यायवाचस्पति आदि। जीवन मे आपने अनेक आर्यसमाजी तथा अन्य विद्वानो का शास्त्रार्थ मे परास्त किया। श्री गोपालदासजी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत **जैनमित्र** नामक पाक्षिक पत्रिका से की, जो आज भी भारत मे गुजरात के सूरत नामक शहर मे प्रकाशित होती है।

पण्डित गोपालदासजी ने जैनदर्शन के सैद्धान्तिक विषयों को समाहित करते हुए अनेक रचनाये लिखी, इनमे भी उन्होने अनेक सैद्धान्तिक विषयो का समावेश अत्यन्त सहज, सरल शैली मे किया। उनकी प्रमुख पुस्तको मे **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** और **श्री जैन सिद्धान्त दर्पण** है। आपने बहुचर्चित **सुशीला उपन्यास** भी तत्कालीन नवयुवको में चेतना जागृत करने के उद्देश्य से लिखा था, जो कि धर्मविमुख हो रहे थे।

इनके अलावा भी आपके द्वारा लिखित कुछ लेख है। जैसे - जैन ज्योग्राफी (Jain Geography), जैन सिद्धान्त (Jain Philosophy)

सार्वधर्म, उन्नति, आत्महित (भाषण), सृष्टिकर्तृत्वमीमासा आदि। इस प्रकार उनकी सर्वतोमुखी सफलता का मूलश्रेय उनकी नि स्वार्थ सेवाभावना को ही जाता है।

उन्होने मुरैना स्थित सस्कृत विद्यालय के जरूरतमन्द छात्रो को छात्रवृत्ति प्रदानकर समाजसेवा के क्षेत्र मे अपना अमूल्य योगदान दिया। उन्होने कभी भी अपने लौकिक स्वार्थ के लिए धार्मिक कार्य नही किये। धार्मिक दृष्टि से भी आप उज्ज्वल चरित्र के धारक थे, पञ्चाणुव्रतो का पालन दृढता से करते थे।

आपने अपना सम्पूर्ण जीवन प्राणीमात्र के हित के लिए व्यतीत किया और व्यापार के क्षेत्र मे भी उन्होने पूर्ण ईमानदारी का परिचय दिया। एक बार जब मुरैना के बाजार मे आग लग गयी तो दूसरे व्यापारियो की तरह उन्हे भी बडा आर्थिक नुकसान हुआ। सबके व्यापार का बीमा था। यद्यपि अनेक व्यापारियो ने बीमा कम्पनी स अपने माल से बहुत ज्यादा राशि वसूल की, तथापि गोपालदासजी ने मात्र अपने नुकसान की रकम को ही बीमा कम्पनी के सामने प्रस्तुत किया।

पण्डित गोपालदासजी अपने जीवन मे छोटी छोटी बातो पर भी ध्यान देते थे। एक बार उनकी पत्नी ने उनको बिना बताये विद्यालय के बढई से अपने बच्चो के लिए कुछ खिलौने बनवा लिय, जिसे बनाने मे उसे मात्र दो घण्टे का समय लगा। जब गोपालदासजी को यह पता चला तो व काफी नाराज हुए और उतने काम की राशि विद्यालय के खाते मे जमा कराई। जब अन्य लोगो ने उनसे पूछा कि आपने इतनी छोटी सी राशि की चिन्ता क्यो की तो उन्होने कहा कि **पाप का प्रारम्भ छोटे पाप से ही होता है, वही आगे जाकर बड़े पाप का रूप धारण करता है।**

ऐसी अनेक घटनाये उनके जीवन मे घटित हुई, जो उनके '**सादा जीवन, उच्च विचार**' की सूक्ति को चरितार्थ करती है। वे नित्य पूजन, स्वाध्याय आदि कर्म करते थे और अनेक सामाजिक समस्याओ का नि स्वार्थभाव

से समाधान करते थे। उनके कार्य उनके उज्ज्वल विचारो के दर्पण थे। वे एक ईमानदार, धार्मिक और न्यायप्रिय व्यक्ति थे। उनका देहावसान मात्र ५१ वर्ष की अल्पायु मे सन् १९१७ अर्थात् वि स १९७३ चैत्र वदी पञ्चमी के दिन उनकी कर्मस्थली मुरैना मे ही हुआ।[१]

पण्डित जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री, जो उनकी अन्तिम यात्रा के प्रत्यक्षदृष्टा थे, उन्होने अपने सस्मरण मे लिखा है कि —

"वे अपना अन्त समय जान चुके थे और उन्होने अपने समाधिमरण की तैयारी उस समय स्वय की थी और सर्व परिग्रह त्यागकर ही नग्नावस्था मे समाधिपूर्वक प्राण विसर्जन किये थे।"[२]

उनके जीवनवृत्त से हमे उत्कृष्ट आध्यात्मिक जीवन के साथ-साथ उज्ज्वल लौकिक जीवन की शिक्षा ग्रहण करना चाहिए।

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका : संक्षिप्त परिचय

सर्वप्रथम गुरुवर्य स्वर्गीय श्री गोपालदास वरैया ने मे '**श्री जैन सिद्धान्त दर्पण**' नामक एक स्वतन्त्र कृति की रचना की। यद्यपि यह उनकी सर्वप्रथम कृति है, तथापि इसमे उनकी अद्‌भुत प्रौढता का परिचय मिलता है। इस कृति के सम्बन्ध मे पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री के विचार दृष्टव्य है —

"यद्यपि जैन सिद्धान्त का रहस्य प्रगट करनेवाले श्री कुन्दकुन्दाचार्य के समान महान आचार्यो के बनाये हुए बड़े-बड़े अनेक ग्रन्थ अब भी मौजूद है, पर उनका असली ज्ञान प्राप्त करना असम्भव नही तो दुःसाध्य अवश्य है, इसलिए जिस तरह सुचतुर लोग जहॉ पर कि सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, वहॉ पर भी बड़े-बड़े चमकीले दर्पण आदि पदार्थो के द्वारा रोशनी पहुँचाकर अपना काम चलाते हैं, उसी तरह जटिल जैन

---

१ गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ पृष्ठ ७, १८ ४६

२ वही पृष्ठ ५४

सिद्धान्तो के पूर्ण प्रकाश को किसी तरह इन जीवो के हृदय-मन्दिर में पहुँचाने के लिए 'जैन सिद्धान्त दर्पण' की आवश्यकता है।

शायद आपने ऐसे पहलदार दर्पण भी देखे होगे, जिनके द्वारा उलट-फेरकर देखने से भिन्न-भिन्न पदार्थों का प्रतिभास होता है; उसी तरह इस 'जैन सिद्धान्त दर्पण' के भिन्न-भिन्न अधिकारों द्वारा सिद्धान्त विषयक भिन्न-भिन्न पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा।''[१]

इसी प्रकार जिनागम मे प्रवेश करने के उद्देश्य से उन्होंने बालावबोधिनी **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** की भी रचना की। यद्यपि परवर्ती चिन्तको को यह रचना भी विस्तृत जान पडी तो उन्होने इसे आधार बनाकर **लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** की रचना की।

इसी प्रवेशिका के आधार पर वयोवृद्ध विद्वान् श्री रामजी मणिकचन्दजी दोशी ने सोनगढ मे लगनेवाले आध्यात्मिक शिक्षण शिविरो को ध्यान मे रखकर '**श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला**' के तीन भागो की रचना की, इसी श्रृङ्खला मे ***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** के सस्थापक पण्डित श्री कैलाशचन्दजी जैन, अलीगढ ने सम्पूर्ण भारतवर्ष मे अपनी विशिष्ट शैली मे धार्मिक कक्षाओ का सञ्चालन अनवरतरूप से ३० वर्षों तक किया, उन्होने भी '**जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला**' के सात भाग एव '**लघु जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला**' की रचनाएँ की।

इन सभी प्रयोगो मे जिस **प्रश्नोत्तर शैली** का प्रयोग किया गया, उसके सर्वप्रथम प्रयोगकर्ता पण्डित श्री गोपालदास बरैया ही है। इस सम्बन्ध मे सिद्धान्ताचार्य स्व कैलाशचन्द शास्त्री, बनारस के विचार अवलोकनीय है —

''इस कोष के निर्माण मे गुरुजी ने जो विषयानुक्रम रखा है, वह इतना सुव्यवस्थित है कि एक प्रश्न को उपस्थित कर देने से उससे सम्बद्ध विषयो की प्रश्नोत्तरमाला बिना किसी उलझन के आगे बढ़ती जाती है

---

१ गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २८४

और अध्याय समाप्त हो जाता है।.. संक्षेप मे यह एक ऐसा जेबी कोश है, जो जैन सिद्धान्त के अभ्यासियों को सदा अपनी जेब में रखना चाहिए।''[१]

यह रचना ६७१ प्रश्नोत्तरो मे निबद्ध है। इस रचना को पॉच प्रमुख अध्यायो में विभक्त किया गया है। यद्यपि उन्होने अध्यायो का नामकरण नहीं किया है। लेकिन उन्होने अध्यायो को उनकी विषयवस्तु के आधार पर ही विभाजित किया है, सम्पादक ने इन अध्यायो को द्रव्य-गुण पर्याय, कर्म का स्वरूप, जीव की खोज, मुक्ति के सोपान और अधिगम के उपाय नामक शीर्षको से उल्लिखित किया है —

प्रथम अध्याय : द्रव्य-गुण-पर्याय

इस अध्याय मे द्रव्य गुण-पर्याय का सामान्य स्वरूप, उनके भेद-प्रभेद आदि का विस्तार से वर्णन **प्रश्न क्रमाङ्क १ से १३४** तक कुल १३४ प्रश्नोत्तरो के द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत सामान्यगुण, विशेषगुण, पुद्गलस्कन्ध, पॉच शरीर, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, लोक-अलोक, अस्तिकाय, अनुजीवी-प्रतिजीवी गुण, चार अभाव, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य आदि विषयो का भी यथासम्भव वर्णन किया है।

द्वितीय अध्याय : कर्म का स्वरूप

इस अध्याय मे ससारी जीव के साथ सम्बद्ध कर्मो का स्वरूप, **प्रश्न क्रमाङ्क १३५ से ३४१** तक कुल २०७ प्रश्नोत्तरो के द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत चार प्रकार के कर्मबन्ध, उनके भेद-प्रभेद, १४८ प्रकार की कर्म प्रकृतियॉ, जीवविपाकी आदि भेद, उनके प्रभेद, घाति-अघाति कर्म, सर्वघाति-देशघातिकर्म, पाप-पुण्यकर्म आदि, सागर, पल्य आदि कालकृत भेद, कर्मो की उदय, उदीरणा आदि अवस्थाएँ, निषेक, स्पर्द्धक, वर्ग, वर्गणा, अविभाग प्रतिच्छेद, समयप्रबद्ध, गुणहानि आदि जैन गणितीय विषय, आस्रव और उसके भेद, आस्रव के कारण — मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय-

---

१ गुरु गोपालदास वरैया स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ ३०३

योग तथा उनके द्वारा होनेवाला बन्ध, उपादान-निमित्तकारण आदि विषयो का वर्णन किया है।

तृतीय अध्याय : जीव की खोज

इस अध्याय मे ससारी जीवो की खोज का वर्णन **प्रश्न क्रमाङ्क ३४२ से ४७१** तक १३० प्रश्नो द्वारा किया गया है। इसके अन्तर्गत जीव के असाधारण पॉच भाव, लेश्या, उपयोग, सज्ञा, चौदह मार्गणाओ, उनके भेद प्रभेद, विग्रहगति, लिङ्ग अनेक प्रकार के जीवसमास, उर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक का वर्णन यथोचित विस्तार के साथ किया हैं।

चतुर्थ अध्याय : मुक्ति के सोपान

इस अध्याय मे मुक्ति प्राप्ति के चौदह सोपानो का वर्णन भूमिका बनाकर **प्रश्न क्रमाङ्क ४७२ से ५६०** तक ८९ प्रश्नोत्तरो के माध्यम से किया गया है। सर्वप्रथम गुणस्थानो का सक्षिप्त स्वरूप बताकर बाद मे एक-एक गुणस्थान का अलग-अलग स्वरूप, उस गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बन्ध -उदय सत्त्व पाया जाता है, इन सबका वर्णन करने के साथ साथ यहॉ अनेक प्रासङ्गिक विषयो का भी खुलासा किया हैं। जैसे व्युच्छित्ति, श्रणी त्रिकरण आदि का स्वरूप।

अध करण का स्वरूप तो एक विस्तृत दृष्टान्त के द्वारा प्रदर्शित किया है। साथ ही यह निर्देश दिया है कि इसका विस्तार के साथ वर्णन गोम्मटसार तथा सुशीला उपन्यास के सोलहवे पर्व मे देख सकते है।

पञ्चम अध्याय : अधिगम के उपाय

इस अध्याय मे सम्यक्त्व-प्राप्ति के उपायभूत तत्त्वार्थो को जानने की विधि का वर्णन **प्रश्न क्रमाङ्क ५६१ से ६७१** तक १११ प्रश्नोत्तरो के द्वारा कराया गया है। पदार्थो को जानने के उपाय चार है - लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप। इन सभी का और उनके भेद प्रभेदो का वर्णन न्यायप्रधान शैली मे

कराया गया है, क्योकि जैनधर्म परीक्षाप्रधानी है। सक्षेपत समस्त जैनन्याय का वर्णन इस अध्याय मे हो जाता है।

यद्यपि इस अध्याय को मूलकृति मे प्रथम अध्याय के रूप मे रखा गया है, क्योंकि ये सर्व विषय जानने के उपाय हैं, तथापि 'द्रव्य-गुण-पर्याय' का महत्त्व देखते हुए उसे पहले और इस अध्याय को अन्तिम अध्याय के रूप मे रखा गया है।

नवीन सम्पादित संस्करण का वैशिष्ट्य

पाठको की सुविधा को ध्यान मे रखते हुए इस नवीन सम्पादित सस्करण मे अनेक सशोधन आदि किये गये है, जिनके सम्बन्ध मे पाठको को सूचित करना अनिवार्य है, अत हमने क्या किया ? इसकी सक्षिप्त जानकारी यहाँ प्रस्तुत की जाती है —

१ इस सस्करण मे भाव को सुरक्षित रखते हुए भाषा का आधुनिकीकरण किया गया है, यही कारण है कि इसे सम्पादित सस्करण नाम दिया गया है। जैसे — **द्रव्य किसको कहते है ?** के स्थान '**द्रव्य किसे कहते है ?**' आदि अनेक प्रकार से सशोधन किया गया है।

२ यद्यपि पूर्व प्रकाशित प्रतियो मे **अध्यायो** तथा **प्रश्नो का क्रम** आगे-पीछे मिलता है, तथापि हमने सोनगढ से प्रकाशित क्रम को ही यथावत् रखा है।

३ प्रत्येक अध्याय का नामकरण करने के साथ-साथ प्रारम्भ मे **दोहा** लिखा गया है, जो सम्पादक की अपनी रचना है।

४ अध्यायो के अन्तर्गत कुछ **शीर्षकों** एव **उपशीर्षकों** का भी प्रयोग किया गया है। शीर्षको मे प्रथम सख्या, अध्याय के क्रमाङ्क की सूचक है, द्वितीय सख्या, शीर्षक के क्रमाङ्क की सूचक है तथा तृतीय सख्या उपशीर्षक के क्रमाङ्क की सूचक है। जैसे — **२ १** अर्थात् द्वितीय अध्याय का पहला शीर्षक है। इसी प्रकार **१ ८.३** अर्थात् प्रथम अध्याय के आठवे शीर्षक के अन्तर्गत तीसरा उपशीर्षक है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए।

५ अनेक प्रश्नोत्तरो को आवश्यकता की दृष्टि से पाद-टिप्पणी मे जोडा गया है। जैसे — **विश्व किसे कहते है, तैजस शरीर किसे कहते है ?** आदि। ध्यान रहे कि उक्त प्रश्न मूल मे नहीं है।

६. अनेक स्थानो पर **विशेष टिप्पणियाँ** दी गई है। जैसे प्रश्न क्रमाङ्क ७४ मे अन्योन्याभाव की एक अन्य परिभाषा दी गई है। इसीप्रकार अन्यत्र जानना चाहिए।

७ कुछ स्थानो पर प्राचीन मूल ग्रन्थो के आधार पर **परिभाषाओं में संशोधन** किया गया है। जैसे - प्रश्न क्रमाङ्क ९० मे अवग्रह की परिभाषा का मशोधन न्यायदीपिका के आधार पर किया गया है।

८. कुछ स्थानो पर एक ही प्रश्न क्रमाङ्क मे दो प्रश्न (अ) और (ब) के रूप मे पूछे गये है, उन्हें (अ) और (ब) के रूप मे विभाजित किया गया है। जैसे — प्रश्न क्रमाङ्क २१० (अ) और २१० (ब)।

सशोधन, सम्पादन आदि कार्य करते ममय यदि कोई जाने अनजाने भूल हो गयी हो तो सूचित करने का विनम्र निवेदन है, ताकि आगामी सस्करणो मे **भूल-सुधार** किया जा सके। आशा है इस नवीन सम्पादित सस्करण का सदुपयोग करते हुए हम और आप आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर होंगे - यही भावना है।

— सम्पादक

अलीगढ
२७ दिसम्बर २००४

पण्डित राकेश जैन शास्त्री
निदेशक, पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र
तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़
एव श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर

विषय सूची

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया के सम्बन्ध मे

विद्वानों द्वारा प्रदत्त उपाधियाँ

१	विलक्षण प्रतिभा के धनी	– क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी
२	अविस्मरणीय मेरे विद्यागुरु	– पण्डित वंशीधर शास्त्री
३	गुरुणामपि गुरु (गुरुओ के गुरु)	– पण्डित जगन्मोहनलाल शास्त्री
४	सुधारक शिरोमणि वरैयाजी	– डॉ ज्योतिप्रसाद जैन
५	अगाध पाण्डित्य के धनी	– पण्डित नाथूराम प्रेमी
६	मङ्गलस्वरूप गुरुजी	– पण्डित फूलचन्द शास्त्री
७	जैन समाज के श्रेष्ठ पण्डित	– पण्डिता सुमतिबाई शहा
८	विद्वद्-शृखला के जन्मदाता	– पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य
९	उज्ज्वल चरित्र के साधक	– पण्डित चैनसुखदास न्यायतीर्थ
१०	महान विद्वानो मे से एक	– पण्डित रतनचन्द्र मुख्तार
११	जैन विद्वानो मे एक आदर्शरत्न	– विद्वान् श्री मूलचन्द्र कापडिया
१२	जैन जागरण के अरुणोदय	प्रो खुशालचन्द गोरावाला
१३	स्वयबुद्ध गुरु	– पण्डित परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ
१४	हमारे ज्ञानप्रदाता	– पण्डित नाथूलाल शास्त्री
१५	पाण्डित्य-सयम सहज सयोग	– पण्डित विमलकुमार सोरया
१६	आचार्य समन्तभद्र के प्रतिरूप	– पण्डित नेमिचन्द्र शास्त्री
१७	आदर्श विद्वद्रत्न गुरुवर	– पण्डित बालचन्द न्यायतीर्थ
१८	जेबी कोश के रचयिता	– पण्डित कैलाशचन्द शास्त्री
१९	विशाल वाङ्मय के अध्येता	– डॉ दरबारीलाल कोठिया
२०	सकलतार्किकचक्रचूडामणि	– डॉ राजाराम जैन

(– गुरु गोपालदास वैरया स्मृति ग्रन्थ से साभार)

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया के सम्बन्ध मे

श्रेष्ठिवर्ग द्वारा प्रदत्त विशेषतायें

१	ज्ञानवेल के रोपक	— साहू शान्तिप्रसाद जैन
२	पूज्य चरण गुरुजी	— साहू श्रेयांसप्रसाद जैन
३	विद्वानो के कुलगुरु	— सरसेठ भागचन्द सोनी
४	प्रतिभामूर्ति पण्डितजी	— सेठ राजकुमारसिंह कासलीवाल
५	सरलता–सादगी के अवतार	— श्री मिश्रीलाल गंगवाल
६	चारित्रमूर्ति श्रावक गुरु	— शीलचन्द शास्त्री
७	यश स्तूप गुरुदेव	— सेठ मिश्रीलाल काला
८	एक अनोखा व्यक्तित्व	— सेठ जगन्नाथ पाण्ड्या
९	गौरवगिरि गुरु गोपालदास	— सेठ भगवानदास शोभालाल जैन
१०	मानवता के उन्नायक	— सेठ हरिशचन्द्र जैन
११	उच्चकोटि के साधक	— श्री यशपाल जैन
१२	युगदृष्टा श्रद्धेय गुरुजी	— सवाई सिंघई धन्यकुमार जैन
१३	बदल दिया इतिहास धरा का	— श्री शमनलाल 'सरस'
१४	निस्पृह निर्भीक सेवाभावी	— श्री बाबूलाल जैन फागुल्ल
१५	एक गोपालदासो गुरुरेक एव	— श्री अमृतलाल साहित्याचार्य
१६	समाज के अक्षुण्ण सेवक	— श्री उग्रसेन बण्डी
१७	कल्याणकारी महामानव	— श्री ज्ञानचन्द्र जैन 'स्वतन्त्र'
१८	प्रतिभाशाली स्वयबुद्ध गुरुदेव	— श्री सिद्धसेन जैन गोयलीय
१९	मातृभाषा के हिमायती	— श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
२०	कर्मठ विद्वान	— श्री चन्दूलाल कस्तूरचन्द

(— गुरु गोपालदास वैरया स्मृति ग्रन्थ से साभार)

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, श्री जैन सिद्धान्त दर्पण
सुशीला उपन्यास और अनेक निबन्धों के
सिद्धहस्त लेखक एवं सिद्धान्तवेत्ता
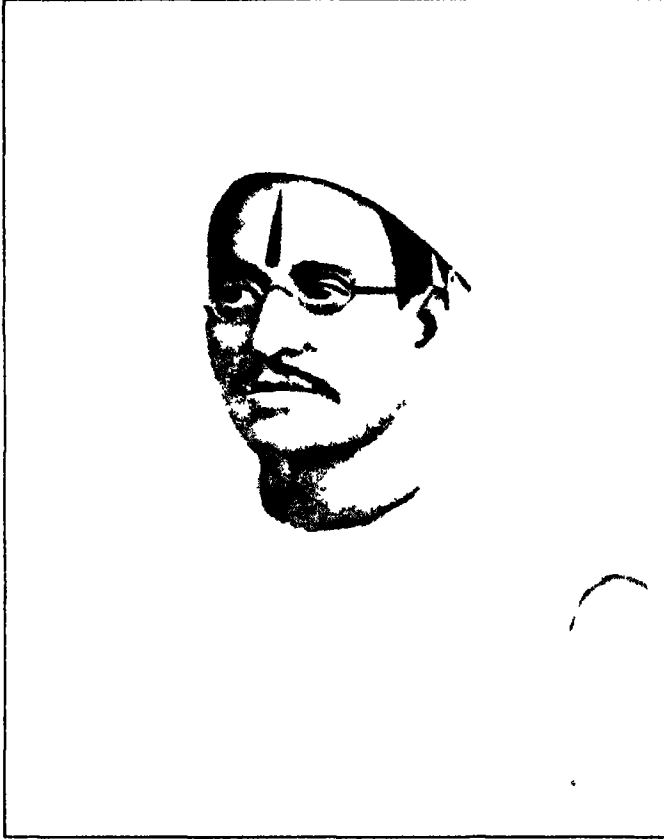
स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेसरी, न्यायवाचस्पति

गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी वरैया

देह-सयोग सन् १८६७] [देह-वियोग सन् १९१७

गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदास वरैया द्वारा रचित

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

(नवीन सम्पादित संस्करण)

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

गुरुवर्य पण्डित श्री गोपालदासजी बरैया

द्वारा रचित

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

॥ मङ्गलाचरण ॥

(उपजाति छन्द)

नत्वा जिनेन्द्रं गत-सर्व-दोषं, सर्वज्ञ-देवं हित-दर्शकं च।
श्रीजैन-सिद्धान्त-प्रवेशिकेयं, विरच्यते स्वल्प-धियां हिताय॥

अर्थ — मैं (**गतसर्वदोषं**) सर्वदोषों से रहित वीतरागी, (**सर्वज्ञदेवं**) सर्वज्ञदेव (**च**) और (**हितदर्शकं**) परमहितोपदेशी — ऐसे (**जिनेन्द्रं**) जिनेन्द्र परमात्मा को (**नत्वा**) नमस्कार करके (**स्वल्पधियां हिताय**) अल्पबुद्धि के धारक जीवों के हित के लिए (**इयं**) यह (**श्रीजैनसिद्धान्त-प्रवेशिका**) श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (**विरच्यते**) लिखता हूँ।

विशेषार्थ — यहाँ ग्रन्थकार ने मङ्गलाचरण करते हुए जिनेन्द्र परमात्मा के तीन गुण — वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी का स्मरण करते हुए उन्हें नमस्कार किया है। तथा ग्रन्थ लिखने की प्रतिज्ञा करते हुए वे लिखते हैं कि मैंने यह 'श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका', अत्यन्त अल्पबुद्धि के धारक जीवों को ध्यान में रखकर बनायी है अर्थात् विशेष बुद्धिमानजन इसे पढ़कर किसी प्रकार का विसंवाद न करें - ऐसी प्रार्थना भी इसमे सम्मिलित है अर्थात् इससे उनकी विनम्रता का परिचय भी मिलता है।

धर्म और धर्मोपदेश का पात्र

जब तक हमारे चित्त से अन्याय और अभक्ष्यरूपी मलिनता दूर न होगी, तब तक हम धर्म और धर्मोपदेश के पात्र कदापि नही हो सकते। इस बात के धोखे मे मत रहना कि हमने जैनकुल मे जन्म लिया है, हम उन तीर्थङ्करो की सन्तान हैं, जो इस धर्म के अधिष्ठाता थे। यह वह अदालत नही है कि जहाँ खानदान के ख्याल से कुछ रियायत की जाए। यह वह सच्ची अदालत है, जहाँ 'दूध का दूध और पानी का पानी' यथार्थ निर्णय होता है, जहाँ बडे-बडे धनाढ्य धर्म से विमुख होने पर अचल स्थावर बना दिये जाते हैं, अत मोह-निद्रा से जागो।

यदि आपको जैनी कहलाने का अभिमान है, यदि आप अपने को उन ऋषि और तीर्थङ्करो की सन्तान समझते हैं जिनके उज्जवल चारित्र का यश दशो दिशाओ मे व्याप्त हो रहा था और यदि आपको अपने जैनधर्म की उत्तमता का कुछ भी गर्व है तो सबसे पहले अपने को धर्मोपदेश का पात्र बनाओ। यह अन्याय-अभक्ष्य सेवन का कलङ्क धो डालो। क्या तुमको इस बात की कुछ भी लज्जा नही आती कि हम जैनी होकर माँस-मदिरा मिश्रित अस्पताल की औषधी कैसे ग्रहण करते है। क्या तुमको इस बात की शरम नही आती कि हम उत्तम कुलीन होकर वेश्या तथा परस्त्री सेवन और रात्रिभोजन किस प्रकार करते हैं।

यदि आपको धर्मोन्नति करने का कुछ भी प्रेम है तो रात्रिभोजन, मद्य, माँस, मधु, पञ्च उदुम्बर फल और सप्त व्यसन का शीघ्र ही त्याग करके अपने को धर्म और धर्मोपदेश का पात्र बनाओ। जब तक पात्र नही बनोगे, तब तक धर्म की प्राप्ति असभव है।

— गुरुवर्य गोपालदास वरैया, 'उन्नति' (लेख), स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ २१०

प्रथम अध्याय

द्रव्य-गुण-पर्याय

(दोहा)

द्रव्य-गुण-पर्याय का, जो नित होवे ज्ञान।

शीघ्र मिले सम्यक्त्व पद, पावे पद निर्वाण।।

१ १ द्रव्य और गुण

प्रश्न १ – द्रव्य किसे कहते हैं?[१]

उत्तर – गुणो के समूह को **द्रव्य** कहते हैं।

प्रश्न २ – गुण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागो और उसकी सर्व अवस्थाओ मे रहते हैं, उन्हे **गुण** कहते है।

प्रश्न ३ – गुण के कितने भेद हैं?

उत्तर – गुण के **दो** भेद है – सामान्य और विशेष।

प्रश्न ४ – सामान्यगुण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो सब द्रव्यो मे समानरूप से रहते हैं, उन्हे **सामान्यगुण** कहते है।

प्रश्न ५ – विशेषगुण किसे कहते हैं?

उत्तर – जो सब द्रव्यो मे न रहकर अपने-अपने द्रव्य मे रहते है, उन्हे **विशेषगुण** कहते है।

---

१ **प्रश्न – विश्व किसे कहते हैं?**

उत्तर – छह द्रव्यो के समूह को **विश्व** कहते है।

(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १)

प्रश्न ६ — सामान्यगुण कितने है?

उत्तर — सामान्यगुण **अनेक** हैं, लेकिन उनमे **छह** मुख्य हैं।

जैसे — अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्वगुण।

प्रश्न ७ — अस्तित्वगुण किसे कहते है?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी नाश नहीं होता है, उसे **अस्तित्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न ८ — वस्तुत्वगुण किसे कहते है?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य मे अर्थक्रिया होती है, उसे **वस्तुत्वगुण** कहते हैं। जैसे — घडे की अर्थक्रिया जल धारण करना है।

प्रश्न — द्रव्यत्वगुण किसे कहते है?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य सर्वदा एक-सा नहीं रहता और जिसकी पर्यायें (दशाऐं) हमेशा बदलती रहती हैं, उसे **द्रव्यत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १० — प्रमेयत्वगुण किसे कहते है?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय होता है, उसे **प्रमेयत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न ११ — अगुरुलघुत्वगुण किसे कहते है?

उत्तर — जिस शक्ति के कारण द्रव्य मे द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नही परिणमता और एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं परिणमता और द्रव्य मे रहनेवाले अनन्त गुण बिखर कर अलग-अलग नहीं होते हैं, उसे **अगुरुलघुत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १२ – प्रदेशत्वगुण किसे कहते है?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य होता है, उसे **प्रदेशत्वगुण** कहते हैं।

१.२ द्रव्यों के भेद एवं स्वरूप

प्रश्न १३ – द्रव्यो के कितने भेद है?

उत्तर – द्रव्यो के **छह** भेद हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य।

प्रश्न १४ – जीवद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर – जिनमे चेतना आदि गुण पाये जाते है, उन्हे **जीवद्रव्य** कहते हैं।

प्रश्न १५ – पुद्गलद्रव्य किसे कहते है?

उत्तर – जिनमे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि गुण पाये जाते हैं, उन्हे **पुद्गलद्रव्य** कहते हैं।

प्रश्न १६ – पुद्गल के कितने भेद है?

उत्तर – पुद्गल के **दो** भेद हैं – परमाणु और स्कन्ध।

प्रश्न १७ – परमाणु किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता – ऐसे सबसे सूक्ष्म पुद्गल को **परमाणु** कहते हैं, यही वास्तव मे पुद्गलद्रव्य है।

प्रश्न १८ – स्कन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर – अनेक परमाणुओ के बन्ध को **स्कन्ध** कहते हैं।

प्रश्न १९ – बन्ध किसे कहते है?

उत्तर – अनेक वस्तुओं मे एकपने का ज्ञान कराने वाले सम्बन्ध-विशेष को **बन्ध** कहते हैं।

प्रश्न २० – स्कन्ध के कितने भेद हैं?

उत्तर – स्कन्ध के आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनो-वर्गणा, कार्मणवर्गणा आदि **२३** भेद हैं।

प्रश्न २१– आहारवर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर – जो पुद्गलस्कन्ध या वर्गणा, औदारिक, वैक्रियिक और आहारक – इन तीन शरीररूप तथा श्वासोच्छ्वासरूप परिणमित होते हैं, उन्हें **आहारवर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २२ – औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर – मनुष्य और तिर्यञ्च के स्थूल शरीर को **औदारिक शरीर** कहते है।

प्रश्न २३ – वैक्रियिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर – जो छोटे-बडे, एक-अनेक, पृथक्-अपृथक् आदि विचित्र क्रियाओ को कर सकता है – ऐसे देव और नारकियो के शरीर को **वैक्रियिक शरीर** कहते हैं।

प्रश्न २४ – आहारक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर – छठवे गणस्थानवर्ती मुनि को जिनालय आदि की वन्दना करने हेतु अथवा तत्त्वो के सम्बन्ध मे कोई शङ्का होने पर केवली या श्रुतकेवली के पास जाने के लिए मस्तक मे से जो एक हाथ का स्वच्छ, सफेद, सप्तधातुरहित पुरुषाकार जो पुतला निकलता है, उसे **आहारक शरीर** कहते हैं।

प्रश्न २५ – तैजसवर्गणा किसे कहते हैं?[1]

---

[1] प्रश्न – तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर – औदारिक और वैक्रियिक शरीर को कान्ति देनेवाले शरीर को **तैजस शरीर** कहते है। (– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १)

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, तैजस शरीररूप परिणमित होते है, उन्हे **तैजसवर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २६ — भाषावर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, शब्दरूप परिणमित होते हैं, उन्हे **भाषावर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २७ — मनोवर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, द्रव्य-मनरूप परिणमित होते है, उन्हे **मनोवर्गणा** कहते है।

प्रश्न २८ — कार्मणवर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जो पुद्गलस्कन्ध, कार्मण शरीररूप परिणमते है, उन्हे **कार्मणवर्गणा** कहते है।

प्रश्न २९ — कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर — ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मो के समूह को **कार्मण शरीर** कहते है।

प्रश्न ३० — तैजस और कार्मण शरीर किसके होते हैं?

उत्तर — तैजस और कार्मण शरीर **सभी ससारी जीवो** को होते है।[1]

प्रश्न ३१ — धर्मद्रव्य किसे कहते है?

उत्तर — जो स्वय गतिरूप मे परिणमित जीवो और पुद्गलो को

---

१ **प्रश्न — एक जीव के एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं?**

उत्तर — एक जीव के एकसाथ कम से कम दो और अधिक से अधिक चार शरीर हो सकते है। विग्रहगति मे तैजस और कार्मण, मनुष्य और तिर्यञ्च के औदारिक, तैजस और कार्मण, देवो और नारकियो के वैक्रियक, तैजस और कार्मण तथा आहारक ऋद्धिधारी मुनि के औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर होते है।

(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ३५)

गमन करने (चलने) में सहकारी हो अथवा निमित्त हो, उसे **धर्मद्रव्य** कहते हैं। जैसे — मछली के गमन मे जल।

प्रश्न ३२ — अधर्मद्रव्य किसे कहते है?

उत्तर — जो गतिपूर्वक स्वयरूप स्थितिरूप से परिणमित जीव और पुद्गलो को रुकने (ठहरने) मे सहकारी अथवा निमित्त हो, उसे **अधर्मद्रव्य** कहते हैं। जैसे — पथिक को रुकने मे वृक्ष की छाया।

प्रश्न ३३ — आकाशद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर — जो जीवादि पॉच द्रव्यो को रहने के लिए स्थान देता है, उसे **आकाशद्रव्य** कहते हैं। जैसे — मनुष्यो को रहने के लिए घर, मकान आदि।

प्रश्न ३४ — कालद्रव्य किसे कहते है?

उत्तर — जो जीवादि समस्त द्रव्यो के परिणमन मे सहकारी अथवा निमित्त होता है, उसे **कालद्रव्य** कहते हैं। जैसे — कुम्हार के चाक को घूमने में लोहे की कीली।

प्रश्न ३५ — काल के कितने भेद है?

उत्तर — काल के **दो** भेद हैं — निश्चयकाल और व्यवहारकाल।

प्रश्न ३६ — निश्चयकाल किसे कहते है?

उत्तर — कालद्रव्य को **निश्चयकाल** कहते हैं।

प्रश्न ३७ — व्यवहारकाल किसे कहते है?

उत्तर — कालद्रव्य की पल, घडी, दिन, माह, वर्ष आदि पर्यायो को **व्यवहारकाल** कहते हैं।

१.३ पर्याय

प्रश्न ३८ — पर्याय किसे कहते है?

उत्तर — गुणो के विकार (परिणमन या कार्य) को **पर्याय** कहते हैं।

प्रश्न ३९ – पर्याय के कितने भेद है?

उत्तर – पर्याय के **दो** भेद हैं – व्यञ्जनपर्याय और अर्थपर्याय।

प्रश्न ४० – व्यञ्जनपर्याय किसे कहते है?

उत्तर – प्रदेशत्वगुण के विकार (परिणमन या कार्य) को **व्यञ्जनपर्याय** कहते हैं।

प्रश्न ४१ – व्यञ्जनपर्याय के कितने भेद है?

उत्तर – व्यञ्जनपर्याय के **दो** भेद हैं – स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय और विभाव-व्यञ्जनपर्याय।

प्रश्न ४२ – स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय किसे कहते है?

उत्तर – अन्य के निमित्त बिना जो व्यञ्जनपर्याय होती है, उसे **स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय** कहते हैं। जैसे – जीव की सिद्ध पर्याय।

प्रश्न ४३ – विभाव-व्यञ्जनपर्याय किसे कहते है?

उत्तर – अन्य के निमित्तसहित जो व्यञ्जनपर्याय होती है, उसे **विभाव-व्यञ्जनपर्याय** कहते हैं। जैसे – जीव की नर-नारकादि पर्याय।

प्रश्न ४४ – अर्थपर्याय किसे कहते है?

उत्तर – प्रदेशत्वगुण के अलावा अन्य समस्त गुणो के विकार (परिणमन या कार्य) को **अर्थपर्याय** कहते हैं।

प्रश्न ४५ – अर्थपर्याय के कितने भेद है?

उत्तर – अर्थपर्याय के **दो** भेद हैं – स्वभाव-अर्थपर्याय और विभाव-अर्थपर्याय।

प्रश्न ४६ – स्वभाव-अर्थपर्याय किसे कहते है?

उत्तर – अन्य के निमित्त बिना जो अर्थपर्याय होती है, उसे **स्वभाव-अर्थपर्याय** कहते हैं। जैसे – जीव का केवलज्ञान।

प्रश्न ४७ – विभाव-अर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर – अन्य के निमित्तसहित जो अर्थपर्याय होती है, उसे **विभाव-अर्थपर्याय** कहते हैं। जैसे – जीव के राग-द्वेष आदि।[1]

१.४ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य

प्रश्न ४८ – उत्पाद किसे कहते हैं?

उत्तर – द्रव्य मे नवीन पर्याय की प्राप्ति को **उत्पाद** कहते हैं।

प्रश्न ४९ – व्यय किसे कहते हैं?

उत्तर – द्रव्य मे पूर्व पर्याय के त्याग को **व्यय** कहते है।

प्रश्न ५० – ध्रौव्य किसे कहते हैं?

उत्तर – प्रत्यभिज्ञान की कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को **ध्रौव्य** कहते हैं।

१.५ द्रव्यों के विशेषगुण -

प्रश्न ५१ – प्रत्येक द्रव्य के विशेषगुण कौन-कौन से हैं?

उत्तर – जीवद्रव्य मे चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, क्रियावतीशक्ति[2] इत्यादि। पुद्गलद्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण,

---

१ **प्रश्न – किस-किस द्रव्य मे कौन-कौनसी पर्याये होती हैं?**

उत्तर – जीव और पुद्गलद्रव्य मे स्वभाव-अर्थपर्याय, विभाव-अर्थपर्याय, स्वभाव-व्यञ्जनपर्याय और विभाव-व्यञ्जनपर्याय – इस प्रकार चारो पर्याय होती है। धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य मे स्वभाव-अर्थपर्याय और स्वभाव-व्यजनपर्याय – इस तरह केवल दो पर्याय होती है। **(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ६८)**

२ जीव और पुद्गल मे क्रियावतीशक्ति नाम का गुण नित्य है, उसके कारण अपनी-अपनी योग्यतानुसार कभी क्षेत्रान्तररूप पर्याय होती है, कभी स्थिर रहनेरूप पर्याय होती है। कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक-दूसरे को गमन या स्थिरता नही करा सकते, दोनो द्रव्य अपनी-अपनी क्रियावतीशक्ति की उस समय की योग्यता के अनुसार स्वत गमन करते है या स्थिर होते हैं। **(– वही, प्रश्न १६ की पाद-टिप्पणी)**

क्रियावतीशक्ति आदि। धर्मद्रव्य मे गतिहेतुत्व आदि। अधर्मद्रव्य मे स्थितिहेतुत्व आदि। आकाशद्रव्य मे अवगाहनहेतुत्व आदि और काल द्रव्य मे परिणमनहेतुत्व आदि विशेषगुण है।

१.६ लोक और अलोक

प्रश्न ५२ – आकाश के कितने भेद हैं?

उत्तर – आकाश **एक** अखण्ड द्रव्य है।

प्रश्न ५३ – आकाश कहाँ पर है?

उत्तर – आकाश **सर्वव्यापी** है।

प्रश्न ५४ – लोकाकाश किसे कहते हैं?

उत्तर – आकाश मे जहाँ तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल – ये पाँच द्रव्य रहते हैं, उसे **लोकाकाश** कहते है।

प्रश्न ५५ – अलोकाकाश किसे कहते हैं?

उत्तर – लोक से बाहर के आकाश को **अलोकाकाश** कहते है।

प्रश्न ५६ – लोक की मोटाई, ऊँचाई और चौडाई कितनी है?[1]

उत्तर – लोक की मोटाई, उत्तर और दक्षिण दिशा मे सब जगह सात राजू है। चौडाई पूर्व और पश्चिम दिशा मे सबसे नीचे सात राजू है। ऊपर क्रम से घटकर सात राजू की ऊँचाई पर एक राजू है। फिर क्रम

---

१ लोक की रचना कमर पर दोनों तरफ रखकर खड़े हुए मनुष्य के समान मानी गयी है अथवा नीचे एक उल्टी अर्द्धमृदङ्ग और उसके ऊपर एक पूर्ण मृदङ्ग रखने पर जैसी आकृति बनती है उसके समान है। लोक का प्रमाण ३४३ घन राजू है। यह सम्पूर्ण लोक तीन प्रकार के वातवलय से वेष्टित है – १ घनोदधिवात, २ घनवातवलय और ३ तनुवातवलय। ये तीनों वातवलय सामान्यतया २०–२० हजार योजन प्रमाण मोटाई वाले है। यह लोक तीन भागों में विभाजित है १ अधोलोक २ मध्यलोक और ३ ऊर्ध्वलोक। सम्पूर्ण लोक के बाहर दशों दिशाओं में अनन्त अलोकाकाश है।

(– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ४३८ के आधार पर)

से बढकर साढे दस राजू की ऊँचाई पर पाँच राजू है। फिर क्रम से घटकर चौदह राजू की ऊँचाई पर पुन एक राजू है तथा लोक की ऊँचाई ऊर्ध्व और अधो दिशा मे चौदह राजू है।

प्रश्न ५७ — धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य खण्डरूप है अथवा अखण्डरूप? तथा इनका स्थान कहाँ है?

उत्तर — धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य दोनों एक-एक अखण्ड द्रव्य हैं और दोनो ही समस्त लोकाकाश मे व्याप्त हैं।

प्रश्न ५८ — प्रदेश किसे कहते हैं?

उत्तर — आकाश के जितने भाग मे एक पुद्‌गल परमाणु व्याप्त होता है, उसे **प्रदेश** कहते हैं?[१]

प्रश्न ५९ — कालद्रव्य कितने है और कहाँ है?

उत्तर — लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालद्रव्य हैं अर्थात् लोक प्रमाण असख्यात हैं, क्योकि लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य (कालाणु) स्थित है।

प्रश्न ६० — पुद्‌गलद्रव्य कितने है और उनका स्थान कहाँ है?

उत्तर — पुद्‌गलद्रव्य **अनन्तानन्त** हैं और वे भी समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

प्रश्न ६१ — जीवद्रव्य कितने और कहाँ है?

उत्तर — जीवद्रव्य **अनन्त** हैं और वे समस्त लोकाकाश मे भरे हुए हैं।

---

१. **प्रश्न — किस द्रव्य में कितने प्रदेश हैं?**

उत्तर — जीव, धर्म, अधर्म और लोकाकाश के असख्यात प्रदेश हैं। पुद्‌गल-स्कन्ध के सख्यात, असख्यात और अनन्त — इस तरह तीनों प्रकार के प्रदेश हैं। कालद्रव्य और पुद्‌गलपरमाणु एकप्रदेशी है। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ५५)**

प्रश्न ६२ – प्रत्येक जीव कितना बड़ा है?

उत्तर – प्रत्येक जीव, प्रदेशों की सख्या अपेक्षा **लोकाकाश के बराबर** है, परन्तु सकोच-विस्तार के कारण वह अपने शरीर के प्रमाण है और मुक्तजीव अन्तित शरीर प्रमाण हैं।

प्रश्न ६३ – लोकाकाश के बराबर कौनसा जीव है?

उत्तर – मोक्ष जाने से पहले केवली-समुद्घात करनेवाला जीव लोकाकाश के बराबर होता है।

प्रश्न ६४ – समुद्घात किसे कहते है?

उत्तर – मूल शगीर को छोडे बिना जीव के प्रदेशो का शरीर से बाहर निकलना **समुद्घात** कहलाता है।

१.७ अस्तिकाय

प्रश्न ६५ – अस्तिकाय किसे कहते है?

उत्तर – बहुप्रदेशी द्रव्य को **अस्तिकाय** कहते हैं।

प्रश्न ६६ – अस्तिकाय के कितने भेद हैं?

उत्तर – अस्तिकाय के **पाँच** भेद हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश, इन पाँचो द्रव्यो को **पञ्चास्तिकाय** कहते हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं हैं, इसलिए वह अस्तिकाय नहीं है।

प्रश्न ६७ – पुद्गल परमाणु भी एक प्रदेशी है तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ?

उत्तर – पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी होने पर भी शक्ति की अपेक्षा से अस्तिकाय है अर्थात् वह स्कन्धरूप होकर बहुप्रदेशी हो जाता है, इसलिए उपचार से उसे भी अस्तिकाय कहा है।

१.८ अनुजीवी और प्रतिजीवी गुण

प्रश्न ६८ – अनुजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के भावस्वरूप गुणो को **अनुजीवी गुण** कहते हैं। जैसे – सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, चेतना, स्पर्श, रस, गध, वर्ण आदि।

प्रश्न ६९ – प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के अभावस्वरूप धर्म को **प्रतिजीवी गुण** कहते हैं। जैसे – नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व आदि।

१.८.१ चार अभाव

प्रश्न ७० – अभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ मे नास्ति (अविद्यमानता) को **अभाव** कहते है।

प्रश्न ७१ – अभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर – अभाव के **चार** भेद है – प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव।

प्रश्न ७२ – प्रागभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय मे अभाव, **प्रागभाव** है।

प्रश्न ७३ – प्रध्वसाभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमानपर्याय का आगामी पर्याय मे अभाव, **प्रध्वसाभाव** है।

प्रश्न ७४ – अन्योन्याभाव किसे कहते हैं?[१]

---

१ श्रीसमयसार के हिन्दी टीकाकार पण्डित जयचन्दजी छाबडा कृत आप्तमीमासा वचनिका श्लोक ११ की टीका मे लिखा है – **'अन्य स्वभावरूप वस्तु तैं अपने स्वभाव का भिन्नपना, याकू इतरेतराभाव कहिए'** अर्थात् अन्य स्वभावरूप वस्तु से अपने स्वभाव का भिन्नपना – इसको **इतरेतराभाव** कहते है। इतरेतराभाव का दूसरा नाम **अन्योन्याभाव** है। **(– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग १, पृष्ठ १२८ के आधार पर)**

उत्तर — एक पुद्गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय मे दूसरे पुद्गलद्रव्य की वर्तमान पर्याय के अभाव को **अन्योन्याभाव** कहते है।

प्रश्न ७५ — अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं?

उत्तर — एक द्रव्य मे दूसरे द्रव्य का जो अभाव होता है, उसे **अत्यन्ताभाव** कहते हैं।[१]

१.८.२ जीव के अनुजीवी गुण

प्रश्न ७६ — जीव के अनुजीवी गुण कौनसे हैं?

उत्तर — चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व,

---

१ **प्रश्न — इन चार अभावो को समझने से क्या लाभ है?**

उत्तर — (१) प्रागभाव को समझने से यह लाभ है कि किसी जीव ने यदि अनादिकाल से अज्ञान-मिथ्यात्वादि दोष किये हो, धर्म कभी नहीं किया हो तो भी वह जीव नवीन पुरुषार्थ से धर्म प्राप्त कर सकता है, क्योकि वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय मे अभाव है।

(२) प्रध्वसाभाव को समझने से यह लाभ है कि यदि किसी जीव ने वर्तमान अवस्था मे धर्म न किया हो तो भी वह जीव उस अधर्म दशा का तुरन्त अभाव करके नवीन पुरुषार्थ से धर्म प्राप्त कर सकता है।

(३) अन्योन्याभाव को समझने से यह लाभ है कि यदि एक पुद्गलद्रव्य की पर्याय, दूसरे पुद्गल की पर्यायो का कुछ भी नही कर सकती है अर्थात् एक-दूसरे को मदद सहायता असर या प्रेरणादि कुछ भी नही कर सकती।

(४) अत्यन्ताभाव को समझने से यह लाभ है कि यदि प्रत्येक द्रव्य मे दूसरे द्रव्य का अभाव होने से कोई द्रव्य, अन्य द्रव्य की पर्यायो मे कुछ भी नही करता अर्थात् सहायता, असर मदद या प्रेरणा इत्यादि कुछ भी नही कर सकता। शास्त्र मे जो कुछ अन्य मे करने-कराने आदि का कथन है वह घी के घडे के समान मात्र व्यवहार का कथन है सत्यार्थ नहीं है।

चार अभावो के सम्बन्ध मे ऐसी समझ करने से स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ होता है — यही सच्चा लाभ है। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १२३)**

जीवत्व, वैभाविक, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनन्त गुण **अनुजीवी गुण** हैं।

१.८.३ जीव के प्रतिजीवी गुण

प्रश्न ७७ – जीव के प्रतिजीवी गुण कौनसे है?

उत्तर – अव्याबाध, अवगाह, अगुरुलघु, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व आदि अनन्त गुण **प्रतिजीवी गुण** हैं।

१.८.४ जीव के अनुजीवी गुणों का विस्तृत विवेचन

प्रश्न ७८ – चेतना किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसमे पदार्थों का प्रतिभास होता है, उसे **चेतना** कहते हैं।

प्रश्न ७९ – चेतना के कितने भेद हैं?

उत्तर – चेतना के दो भेद हैं – दर्शनचेतना और ज्ञानचेतना।

प्रश्न ८० – दर्शनचेतना किसे कहते है?

उत्तर – जिसमे महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक या अवभासन) होता है, उसे **दर्शनचेतना** कहते हैं।

प्रश्न ८१ – महासत्ता किसे कहते हैं?

उत्तर – समस्त पदार्थों के अस्तित्व को ग्रहण करनेवाली सत्ता को **महासत्ता** कहते हैं।

प्रश्न ८२ – ज्ञानचेतना किसे कहते है?

उत्तर – अवान्तरसत्ता-विशिष्ट-विशेष पदार्थ को विषय करनेवाली चेतना को **ज्ञानचेतना** कहते हैं।

प्रश्न ८३ – अवान्तरसत्ता किसे कहते है?

उत्तर – किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को **अवान्तरसत्ता** कहते हैं।

प्रश्न ८४ – दर्शनचेतना के कितने भेद हैं?

उत्तर – दर्शनचेतना के **चार** भेद हैं – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।[१]

प्रश्न ८५ – ज्ञानचेतना के कितने भेद हैं?

उत्तर – ज्ञानचेतना के पाँच भेद हैं – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

प्रश्न ८६ – मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर – इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान होता है, उसे **मतिज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ८७ – मतिज्ञान के कितने भेद है?

उत्तर – मतिज्ञान के दो भेद हैं – साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और परोक्ष।[२]

प्रश्न ८८ – परोक्ष मतिज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर – परोक्ष मतिज्ञान के **चार** भेद हैं – स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान।

प्रश्न ८९ – मतिज्ञान के अन्य प्रकार से कितने भेद है?

उत्तर – अन्य प्रकार से मतिज्ञान के **चार** भेद हैं – अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

प्रश्न ९० – अवग्रह किसे कहते हैं?

---

१. प्रश्न – दर्शनचेतना कब उत्पन्न होती है?

उत्तर – दर्शनचेतना छद्मस्थ जीवों को ज्ञान के पहले और केवलज्ञानियो को ज्ञान के साथ-साथ उत्पन्न होती है। **(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ८२)**

२. व्यवहारिक दृष्टि से जो मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के द्वारा साक्षात् होता है, वह **साव्यवहारिक प्रत्यक्ष मतिज्ञान** कहलाता है तथा जो मतिज्ञान साव्यवहारिक प्रत्यक्ष या धारणा के बाद होता है, वह **परोक्ष मतिज्ञान** कहलाता है।

(– परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थों के आधार पर)

उत्तर — इन्द्रिय और पदार्थ का यथायोग्य सम्बन्ध होने के बाद उत्पन्न हुए सामान्य प्रतिभासरूप दर्शन के पश्चात् अवान्तरसत्तासहित विशेष वस्तु को ग्रहण करनेवाले विशेष ज्ञान को **अवग्रह** कहते हैं। जैसे — यह मनुष्य है।

प्रश्न ९१ — ईहा किसे कहते हैं?

उत्तर — अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विशेष को जानने के लिए उत्पन्न हुए सशय को दूर करने वाले इच्छारूप ज्ञान को **ईहा** कहते हैं, जैसे — ये ठाकुरदासजी होना चाहिए? यह ज्ञान भी इतना कमजोर है कि यदि किसी पदार्थ की ईहा होकर छूट जाये, उसका निश्चय न हो तो उसके विषय मे कालान्तर मे सशय और विस्मरण हो जाता है।

प्रश्न ९२ — अवाय किसे कहते है?

उत्तर — ईहा से जाने हुए पदार्थ मे 'यह वही है, अन्य नही हैं' — ऐसे निश्चयात्मक ज्ञान को **अवाय** कहते हैं, जैसे — ये ठाकुरदासजी ही हैं, अन्य नहीं हैं। अवाय से जाने हुए पदार्थ मे सशय तो नहीं होता, किन्तु विस्मरण हो सकता है।

प्रश्न ९३ — धारणा किसे कहते है?

उत्तर — जिस ज्ञान से जाने हुए पदार्थो मे कालान्तर मे सशय तथा विस्मरण नहीं होता है, उमे **धारणा** कहते हैं।

प्रश्न ९४ — मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के कितने भेद है?

उत्तर — मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के **दो** भेद हैं — व्यक्त और अव्यक्त।

प्रश्न ९५ — क्या अवग्रहादि ज्ञान दोनो ही प्रकार के पदार्थों का होता है?

उत्तर — व्यक्त पदार्थों के अवग्रहादि चारो ही ज्ञान होते हैं, परन्तु अव्यक्त पदार्थों का सिर्फ अवग्रह ही होता है क्योकि अवग्रह के भी दो

भेद हैं – अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

प्रश्न ९६ – अर्थावग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर – व्यक्त पदार्थों के अवग्रह को **अर्थावग्रह** कहते हैं।

प्रश्न ९७ – व्यञ्जनावग्रह किसे कहते है?

उत्तर – अव्यक्त पदार्थों के अवग्रह को **व्यञ्जनावग्रह** कहते हैं।

प्रश्न ९८ – अर्थावग्रह की तरह व्यञ्जनावग्रह भी क्या सभी इन्द्रियो और मन द्वारा होता है?

उत्तर – नहीं, व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मन को छोडकर शेष सब इन्द्रियो द्वारा होता है।

प्रश्न ९९ – व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के कितने भेद है?

उत्तर – व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के बारह-बारह भेद छह जोडो मे हैं – बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनि सृत, नि सृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव और अध्रुव।[1]

प्रश्न १०० – श्रुतज्ञान किसे कहते है?[2]

उत्तर – मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को **श्रुतज्ञान** कहते हैं। जैसे – 'घट' शब्द सुनने के बाद उत्पन्न हुआ कम्बु-ग्रीवा आदि आकाररूप घट का ज्ञान।

---

१. **बहु** – बहुत या अनेक पदार्थ। **एक** – अल्प या एक पदार्थ।
बहुविध – बहुत प्रकार के पदार्थ। **एकविध** – एक प्रकार के पदार्थ।
क्षिप्र – तेज गतिवाले पदार्थ। **अक्षिप्र** – मन्द गतिवाले पदार्थ।
अनि:सृत – आंशिक दिखनेवाले पदार्थ। **नि:सृत** – पूर्ण दिखनेवाले पदार्थ।
अनुक्त – अवर्णित या अकथित पदार्थ। **उक्त** – वर्णित या कथित पदार्थ।
ध्रुव – स्थिर पदार्थ। **अध्रुव** – अस्थिर पदार्थ।

(– तत्त्वार्थसूत्र १/१६ की टीका के आधार)

२. अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान की परिभाषायें पञ्चम अध्याय में प्रश्न क्रमाङ्क ५८२, ५८३ एव ५८५ पर क्रमश दी गयी हैं।

प्रश्न १०१ – दर्शन कब होता है?

उत्तर – अल्पज्ञ जीवो को ज्ञान के पहले दर्शन होता है, क्योकि बिना दर्शन के ज्ञान नहीं होता, परन्तु सर्वज्ञदेव को केवलज्ञान और केवलदर्शन साथ-साथ होते हैं।

प्रश्न १०२ – चक्षुदर्शन किसे कहते है?

उत्तर – चक्षु सम्बन्धी मतिज्ञान से पहले होनेवाले सामान्य प्रतिभास या सामान्य अवलोकन को **चक्षुदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०३ – अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर – चक्षु के अलावा अन्य इन्द्रियो और मन सम्बन्धी मतिज्ञान से पहले होनेवाले सामान्य अवलोकन को **अचक्षुदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०४ – अवधिदर्शन किसे कहते है?

उत्तर – अवधिज्ञान से पहले होनेवाले सामान्य अवलोकन को **अवधिदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०५ – केवलदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर – केवलज्ञान के साथ-साथ होनेवाले सामान्य अवलोकन को **केवलदर्शन** कहते हैं।

प्रश्न १०६ – सम्यक्त्वगुण किसे कहते है?[१]

---

१. सम्यक्त्वगुण का पर्यायवाची श्रद्धागुण है। सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी क्रमश स्वभाव और विभावपर्यायें हैं। सम्यग्दर्शन के अनेक लक्षण हैं, उनमें चार मुख्य हैं – (१) आत्मा का श्रद्धान, (२) स्व-पर का श्रद्धान, (३) जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान तथा (४) सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान। दर्शनमोह की तीन और चारित्रमोह की अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ मिलाकर कुल सात प्रकृतियों के उपशम-क्षय-क्षयोपशम से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन के अलग-अलग अपेक्षाओं से अनेक प्रकार के भेद बताये गये हैं। उत्पत्ति की अपेक्षा दो भेद हैं – निसर्गज और अधिगमज। नयों की अपेक्षा दो भेद हैं – निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन। राग के सद्भाव और अभाव की अपेक्षा सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन। कर्म की अपेक्षा तीन भेद हैं – उपशम सम्यग्दर्शन, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन।

उत्तर — जिस गुण के प्रगट होने पर अपने शुद्ध आत्मा का प्रतिभास होता है, उसे **सम्यक्त्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १०७ — चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर — बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया के निरोध से होनेवाली आत्मा की विशेष शुद्धि को **चारित्र** कहते हैं।[१]

प्रश्न १०८ — बाह्य क्रिया किसे कहते है?

उत्तर — हिसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, मैथुन करना और परिग्रह सञ्चय करना आदि को बाह्य क्रिया कहते हैं।[२]

प्रश्न १०९ — आभ्यन्तर क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर — योग और कषाय को **आभ्यन्तर क्रिया** कहते हैं।

प्रश्न ११० — योग किसे कहते हैं?

उत्तर — मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशो के चञ्चल होने को **योग** कहते हैं।

प्रश्न १११ — कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर — क्रोध-मान-माया-लोभरूप आत्मा के विभाव परिणामों को **कषाय** कहते हैं।

प्रश्न ११२ — चारित्र के कितने भेद है?

उत्तर — चारित्र के **चार** भेद हैं — स्वरूपाचरणचारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र।

---

१. ऐसे परिणामों को स्वरूपस्थिरता, निश्चलता, वीतरागता, साम्य, धर्म और चारित्र कहते हैं। जब आत्मा के चारित्रगुण की शुद्धपर्याय उत्पन्न होती है, तब बाह्य और आभ्यन्तरक्रिया का यथासम्भव निरोध हो जाता है।

(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ९४)

२. यहाँ मुख्यरूप से बाह्य अशुभक्रियाओं का उल्लेख किया है, क्योंकि शुभ-क्रियाओं को व्यवहारनय से देशचारित्र और सकलचारित्र के रूप में माना जाता है, निश्चयचारित्र में तो शुभ और अशुभ दोनों क्रियाओं का निषेध हो जाता है।

प्रश्न ११३ – स्वरूपाचरणचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर – शुद्धात्मानुभवन से अविनाभावी विशेष चारित्र को **स्वरूपाचरणचारित्र** कहते हैं।[१]

प्रश्न ११४ – देशचारित्र किसे कहते है?

उत्तर – श्रावक के व्रतो (अणुव्रतो) को **देशचारित्र** कहते हैं।[२]

प्रश्न ११५ – सकलचारित्र किसे कहते है?

उत्तर – मुनियो को व्रतो (महाव्रतो) को **सकलचारित्र** कहते हैं।[३]

प्रश्न ११६ – यथाख्यातचारित्र किसे कहते है?

उत्तर – कषायो के सर्वथा अभाव से होनेवाली आत्मा की शुद्धि-विशेष को **यथाख्यातचारित्र** कहते हैं।

प्रश्न ११७ – सुख किसे कहते है?

---

१. सम्यक्त्व से अविनाभावी होने के कारण इसे व्यवहार से **सम्यक्त्वाचरणचारित्र** भी कहते हैं। यह चौथे गुणस्थान से ही अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव मे प्रगट होता है। इसके सद्भाव मे अष्ट अङ्गो का पालन, आठ शङ्कादि दोष, आठ मद, छह अनायतन और तीन मूढ़ताओं का त्याग होता है। जीव के भाव प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य से युक्त होते हैं। **(– अष्टपाहुड चारित्रपाहुड के आधार पर)**

२. निश्चय सम्यग्दर्शनसहित-अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरण कषायों के अभावपूर्वक आत्मा मे चारित्र की आशिक शुद्धि प्रगट होती है, वह **निश्चय देशचारित्र** है। इस आशिक शुद्धि के साथ श्रावकदशा मे व्रतादिरूप शुभभाव होते हैं। वहाँ शुद्ध (निश्चय) देशचारित्र स धर्म होता है और व्यवहार व्रतादिक से शुभबन्ध होता है। निश्चयचारित्र के बिना सच्चा व्यवहारचारित्र भी नहीं हो सकता।

(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ९८)

३. निश्चय सम्यग्दर्शनसहित चारित्रगुण की शुद्धि की वृद्धि होने से (अनन्तानुबन्धी आदि तीन कषायों के अभावपूर्वक) आत्मा में उत्पन्न होनेवाली (भावलिङ्गी मुनिपद के योग्य) विशेष शुद्धि को **सकलचारित्र** कहते हैं। मुनिपद मे २८ मूलगुण आदि के शुभभाव होते है, उसे **व्यवहार सकलचारित्र** कहते हैं। **निश्चयचारित्र** आत्माश्रित होने से मोक्षमार्ग है, धर्म है और **व्यवहारचारित्र** पराश्रित होने से बन्धभाव है, मोक्षमार्ग नहीं।

उत्तर – आह्लादस्वरूप आत्मा के परिणाम-विशेष को **सुख** कहते हैं।

प्रश्न ११८ – वीर्य किसे कहते है?

उत्तर – आत्मा की शक्ति या बल को **वीर्य** कहते हैं।[१]

प्रश्न ११९ – भव्यत्वगुण किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान- चारित्र प्रगट होने की योग्यता रहती है, उसे **भव्यत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १२० – अभव्यत्वगुण किसे कहते है?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र प्रगट होने की योग्यता नहीं रहती है, उसे **अभव्यत्वगुण** कहते हैं।

प्रश्न १२१ – जीवत्वगुण किसे कहते है?

उत्तर – जिस शक्ति के कारण आत्मा प्राण धारण करता है, उसे **जीवत्वगुण** कहते हैं।[२]

प्रश्न १२२ – प्राण किसे कहते है?

उत्तर – जिनके सयोग से जीव जीवन अवस्था और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त होता है, उन्हे **प्राण** कहते हैं।

प्रश्न १२३ – प्राण के कितने भेद हैं?

उत्तर – प्राण के **दो** भेद हैं – द्रव्यप्राण और भावप्राण।

प्रश्न १२४ – द्रव्यप्राण के कितने भेद है?

उत्तर – द्रव्यप्राण के **दस** भेद हैं – मनबल, वचनबल, कायबल, स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, कर्ण इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और आयु।

---

१. वीर्यगुण की पर्याय को वीर्य या पुरुषार्थ कहते हैं।

२. जिस शक्ति के कारण आत्मा चैतन्यमात्र भावप्राण को धारण करता है, उसे **जीवत्वशक्ति** कहते हैं। **(– समयसार परिशिष्ट, ४७ शक्ति)**

प्रश्न १२५ – भावप्राण किसे कहते हैं?

उत्तर – आत्मा की जिस शक्ति के निमित्त से इन्द्रियादिक अपने कार्य मे प्रवर्तते हैं, उसे **भावप्राण** कहते हैं।

प्रश्न १२६ – किस जीव के कितने प्राण होते हैं?

उत्तर – एकेन्द्रिय जीव के चार प्राण – स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु। **द्वीन्द्रिय जीव के छह प्राण** – पूर्वोक्त चार – स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु तथा रसना इन्द्रिय और वचनबल। **त्रीन्द्रिय जीव के सात प्राण** – पूर्वोक्त छह और घ्राण इन्द्रिय। **चतुरिन्द्रिय जीव के आठ प्राण** – पूर्वोक्त सात और एक चक्षु इन्द्रिय। **असैनी पञ्चेन्द्रिय जीव के नौ प्राण** – पूर्वोक्त आठ और एक कर्ण इन्द्रिय। **सैनी पञ्चेन्द्रिय जीव के दश प्राण** – पूर्वोक्त ९ और एक मनबल।

प्रश्न १२७ – भावप्राण के कितने भेद है?

उत्तर – भावप्राण के दो भेद हैं – भावेन्द्रिय और भावबल।

प्रश्न १२८ – भावेन्द्रिय के कितने भेद है?

उत्तर – भावेन्द्रिय के **पाँच** भेद हैं – स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण।

प्रश्न १२९ – भावबल के कितने भेद हैं?

उत्तर – भावबल के **तीन** भेद हैं – मनोबल, वचनबल और कायबल।

प्रश्न १३० – वैभाविकगुण किसे कहते हैं?[१]

---

१. यह वैभाविकगुण जीव और पुद्गल – इन दो द्रव्यों में ही होता है। शेष चार द्रव्यों में यह गुण नहीं होता। मुक्तजीवों में इस गुण की शुद्ध स्वाभाविक पर्याय प्रगट हो जाती है। **(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न ११२ की पाद-टिप्पणी)**

उत्तर – जिस शक्ति के निमित्त से दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध होने पर विभाव परिणति होती है, उसे **वैभाविकगुण** कहते हैं।[1]

१.८.५ जीव के प्रतिजीवी गुणों का विवेचन

प्रश्न १३१ – अव्याबाध प्रतिजीवी गुण किसे कहते है?

उत्तर – साता और असातारूप आकुलता (वेदनीयकर्म) के अभाव को **अव्याबाध प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

प्रश्न १३२ – अवगाह प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर – परतन्त्रता (आयुकर्म) के अभाव को **अवगाह प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

प्रश्न १३३ – अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर – उच्चता और नीचता (गोत्रकर्म) के अभाव को **अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

प्रश्न १३४ – सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर – इन्द्रियो के विषयरूप स्थूलता (नामकर्म) के अभाव को **सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण** कहते हैं।

।। इति प्रथमोऽध्याय: समाप्त:।।

---

१. **अप्यस्त्यनादिसिद्धस्य सतः स्वाभाविकी क्रिया।**
वैभाविकी क्रिया चास्ति पारिणामिकशक्तित·।।
न पर स्यात्परायत्ता सतो वैभाविकी क्रिया।
यस्मात्सतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्यैर्न शक्यते।।

अर्थात् यद्यपि सत् अनादिसिद्ध है, तथापि वह परिणमनशील होने से उसकी दो प्रकार की क्रिया होती है – स्वाभाविकी क्रिया और वैभाविकी क्रिया। सत् की वैभाविकी क्रिया केवल पराधीन होती है – ऐसा नहीं है, क्योंकि जो शक्ति सत् की नहीं है, वह अन्य के द्वारा भी नहीं की जा सकती है। **(– पञ्चाध्यायी, उत्तरार्ध, श्लोक ६१,६२)**

द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय

शङ्का – गुणो के समुदाय को द्रव्य कहते है, द्रव्य के इस लक्षण के अनुसार जितनी भी पर्यायें होती है, उन्हे गुणपर्याय कहना ही उचित है। पर्यायो के द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय – ऐसे भेद करना उचित नही है?

समाधान – "उन अनन्त शक्तियो (गुणो मे) के दो भेद हैं – १ क्रियावतीशक्ति और २ भाववतीशक्ति। प्रदेश अथवा देश-परिस्पन्द (चञ्चलता) को **क्रिया** कहते हैं और शक्तिविशेष को **भाव** कहते हैं। अर्थात् अनन्त गुणो मे से प्रदेशवत्वगुण को **क्रियावतीशक्ति** कहते हैं और बाकी के गुणो को **भाववतीशक्ति** कहते हैं। इस प्रदेशवत्वगुण के परिणमन (पर्याय) को **द्रव्यपर्याय** कहते हैं, इसी का दूसरा नाम **व्यञ्जनपर्याय** है। शेष गुणो के परिणमन (पर्याय) को **गुणपर्याय** कहते हैं, इस ही का दूसरा नाम **अर्थपर्याय** है।"

द्रव्य मे अशकल्पना को पर्याय कहते है। वहाँ देशाशकल्पना को द्रव्यपर्याय और गुणाशकल्पना को गुणपर्याय कहते है। गुणपर्याय के दो भेद है – अर्थगुणपर्याय और व्यञ्जनगुणपर्याय।

अथवा 'ज्ञानादिक **भाववतीशक्ति** के विकार को **अर्थगुणपर्याय** कहते हैं और प्रदेशवत्त्वगुणरूप **क्रियावतीशक्ति** के विकार को **व्यञ्जनगुणपर्याय** कहते हैं। इस ही को **द्रव्यपर्याय** भी कहते हैं, क्योकि **व्यञ्जनगुणपर्याय** द्रव्य के आकार को कहते हैं। यद्यपि यह आकार प्रदेशवत्त्वशक्ति का विकार है, इसलिए इसका मुख्यता से **प्रदेशवत्त्वगुण** से सम्बन्ध होने के कारण इसे **व्यञ्जनगुणपर्याय** ही कहना उचित है, तथापि गौणता से इसका देश के साथ भी सम्बन्ध है, इसलिए देशाश को **द्रव्यपर्याय** की उक्ति की तरह इसको भी **द्रव्यपर्याय** कह सकते हैं।'

– गुरुवर्य गोपालदास वरैया, जैन सिद्धान्त दर्पण, पृष्ठ ५५,४०

द्वितीय अध्याय

कर्म का स्वरूप

(दोहा)

कर्मस्वरूप को जानकर, अकर्मस्वभाव पहिचान।
अकर्तृत्व को भोगकर, भये सिद्ध भगवान।।

प्रश्न १३५ – जीव के कितने भेद है?

उत्तर – जीव के दो भेद हैं – ससारी और मुक्त।

प्रश्न १३६ – ससारी जीव किसे कहते है?

उत्तर – कर्मसहित जीव को **ससारी जीव** कहते हैं।

प्रश्न १३७ – मुक्त जीव किसे कहते है?

उत्तर – कर्मरहित जीव को **मुक्त जीव** कहते हैं।

प्रश्न १३८ – कर्म किसे कहते है?

उत्तर – जीव के राग-द्वेषादि परिणामो के निमित्त से जो कार्मण-वर्गणारूप पुद्गल-स्कन्ध जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं, उन्हे **कर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न १३९ – कर्म-बन्ध के कितने भेद है?

उत्तर – कर्म-बन्ध के **चार** भेद हैं – प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध।

प्रश्न १४० – चार प्रकार के कर्म-बन्ध के कारण क्या हैं?

---

१. कषायसहित जीव, कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह **कर्म-बन्ध** कहलाता है। **(–तत्त्वार्थसूत्र ८/२)**

उत्तर – **योग** से प्रकृति और प्रदेशबन्ध होते हैं तथा **कषाय** से स्थिति और अनुभागबन्ध होते हैं।[१]

२.१ प्रकृतिबन्ध

प्रश्न १४१ – प्रकृतिबन्ध किसे कहते है?

उत्तर – मोहादि-जनक तथा ज्ञानादि-घातक उस-उस स्वभाव-वाले कार्मण पुद्गल-स्कन्धो का आत्मा से सम्बन्ध होना, **प्रकृतिबन्ध** कहलाता है।

प्रश्न १४२ – प्रकृतिबन्ध या कर्म के कितने भेद है?

उत्तर – प्रकृतिबन्ध या कर्म के **आठ** भेद हैं – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायकर्म। कर्म और प्रकृति एकार्थवाची हैं।

प्रश्न १४३ – ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को घातता है, उसे **ज्ञानावरणकर्म** कहते हैं।[२]

प्रश्न १४४ – ज्ञानावरणकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – ज्ञानावरणकर्म के **पाँच** भेद हैं – मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञानावरण और केवल-ज्ञानावरणकर्म।

प्रश्न १४५ – दर्शनावरणकर्म किसे कहते है?[३]

---

१. मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग – ये पाँच **कर्म-बन्ध के कारण** हैं। **(– तत्त्वार्थसूत्र ८/१)**

२–३. तत्त्वज्ञान आदि के सम्बन्ध में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन, उपघात आदि भाव ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं अर्थात् **ज्ञानावरण और दर्शनावरणकर्म का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/१०)**

उत्तर – जो कर्म आत्मा के दर्शनगुण को घातता है, उसे **दर्शनावरणकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १४६ – दर्शनावरणकर्म के कितने भेद है?

उत्तर – दर्शनावरणकर्म के नौ भेद हैं – चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धिकर्म।

प्रश्न १४७ – वेदनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जिस कर्म के फल में जीव को बाह्य सुख-दु ख की वेदना होती है अर्थात् जो कर्म निमित्तरूप से आत्मा के अव्याबाधगुण को घातता है, उसे **वेदनीयकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १४८ – वेदनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – वेदनीयकर्म के दो भेद हैं – सातावेदनीय[१] और असातावेदनीयकर्म।[२]

प्रश्न १४९ – मोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्रगुण को घातता है, उसे **मोहनीयकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १५० – मोहनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – मोहनीयकर्म के दो भेद हैं – दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकर्म।

---

१. ससारी जीवों और व्रतियों के प्रति अनुकम्पा, दान और सरागसयम आदि-रूप योग, सहनशीलता, शौच आदि भावों से **सातावेदनीयकर्म का बन्ध** होता है।
(– **तत्त्वार्थसूत्र** ६/१)

२. दु ख, शोक, ताप, चीखना, विलाप करना आदि भावों से **असातावेदनीयकर्म का बन्ध** होता है। (– **तत्त्वार्थसूत्र** ६/११)

प्रश्न १५१ — दर्शनमोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर — जो कर्म आत्मा के सम्यक्त्वगुण को घातता है, उसे **दर्शनमोहनीयकर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न १५२ — दर्शनमोहनीयकर्म के कितने भेद है?

उत्तर — दर्शनमोहनीयकर्म के तीन भेद हैं — मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व और सम्यक्‌प्रकृतिकर्म।

प्रश्न १५३ — मिथ्यात्वकर्म किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव को अतत्त्वश्रद्धान होता है, उसे **मिथ्यात्वकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १५४ — सम्यक्‌मिथ्यात्वकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव को मिश्रित परिणाम होता है अर्थात् जो परिणाम न तो सम्यक्त्वरूप होता है और न मिथ्यात्वस्वरूप होता है, उसे **सम्यक्‌मिथ्यात्वकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १५५ — सम्यक्‌प्रकृति किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्वगुण का समूल घात तो नहीं होता, परन्तु चल-मल-अगाढ आदि दोष उत्पन्न होते हैं, उसे **सम्यक्‌प्रकृति** कहते हैं।

प्रश्न १५६ — चारित्रमोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर — जो कर्म आत्मा के चारित्रगुण को घातता है, उसे **चारित्रमोहनीयकर्म** कहते हैं।[२]

---

१. केवली, श्रुत, सघ, देव आदि का अवर्णवाद करने से **दर्शनमोहनीयकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१३)**

२. कषाय के उदय से तीव्र परिणाम होनेपर **चारित्रमोहनीयकर्म का बन्ध** होता है। **(— तत्त्वार्थसूत्र ६/१४)**

प्रश्न १५७ – चारित्रमोहनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – चारित्रमोहनीयकर्म के **दो** भेद है – कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीयकर्म।[1]

प्रश्न १५८ – कषायवेदनीय के कितने भेद है?

उत्तर – कषायवेदनीय के **सोलह** भेद हैं – अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया और अनन्तानुबन्धी लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया और अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण लोभ, तथा सज्वलन क्रोध, सज्वलन मान, सज्वलन माया और सज्वलन लोभ।

प्रश्न १५९ – नोकषायवेदनीय के कितने भेद है?

उत्तर – नोकषायवेदनीय के **नौ** भेद हैं – हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद।

प्रश्न १६० – अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ किन्हे कहते है?

उत्तर – जो कर्म, आत्मा के स्वरूपाचरणचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हे **अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ** कहते हैं।

---

१. यहाँ वेदनीय शब्द से यह नहीं समझना चाहिए कि यह वेदनीयकर्म का भेद है, बल्कि यहाँ चारित्रमोहनीयकर्म के ही दो भेदो के नाम कषायवेदनीय और नोकषाय-वेदनीय हैं अर्थात् जिस कर्म के उदय से जीव कषाय का वेदन करता है, वह कषायवेदनीय है तथा जिस कर्म के उदय से जीव नोकषाय का वेदन करता है, वह नोकषायवेदनीय है। ये चारित्रमोहनीयकर्म के भेद हैं। **(– धवला १३/५,५,९४/३५९)**

प्रश्न १६१ – अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ किन्हे कहते है?

उत्तर – जो कर्म, आत्मा के देशचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हे **अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ** कहते हैं।

प्रश्न १६२ – प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ किन्हे कहते है?

उत्तर – जो कर्म, आत्मा के सकलचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हे **प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ** कहते हैं।

प्रश्न १६३ – सज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ और नोकषाय किन्हे कहते है?

उत्तर – जो कर्म, आत्मा के यथाख्यातचारित्र परिणाम को घातते हैं, उन्हे **सज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ और नोकषाय** कहते हैं।[१]

प्रश्न १६४ – आयुकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जो कर्म आत्मा को नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के शरीर मे रोककर रखता है, उसे **आयुकर्म** कहते हैं अर्थात् आयुकर्म आत्मा के **अवगाहनगुण** को घातता है।

प्रश्न १६४ – आयुकर्म के कितने भेद है?

उत्तर – आयुकर्म के **चार** भेद हैं – नरकायु[२], तिर्यञ्चायु[३],

---

१. यद्यपि सज्वलन कषाय और नोकषाय मे अन्तर है, तथापि दोनों का अभाव साथ-साथ होता है तथा यथाख्यातचारित्र को घातने की अपेक्षा दोनों में समानता है, अत इन्हें साथ-साथ लिया गया है।

२. बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के भाव से **नरकायु का बन्ध** होता है।
(– तत्त्वार्थसूत्र ६/१५)

३ माया या छलकपट के भाव से **तिर्यञ्चायु का बन्ध** होता है।
(– तत्त्वार्थसूत्र ६/१६)

मनुष्यायु[1] और देवायु[2]।

प्रश्न १६६ – नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जो कर्म जीव को गति आदि अनेक प्रकार से परिणमाता है अथवा शरीरादिक बनाता है, उसे **नामकर्म** कहते हैं अर्थात् नामकर्म आत्मा के **सूक्ष्मत्वगुण** को घातता है।[3]

प्रश्न १६७ – नामकर्म के कितने भेद है?

उत्तर – नामकर्म के **तिरानवै (९३)** भेद हैं – **चार** गति (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव), **पाँच** जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय), **पाँच** शरीर (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण), **तीन** अङ्गोपाङ्ग (औदारिक, वैक्रियिक और आहारक), **एक** निर्माण, **पाँच** बन्धन (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण), **पाँच** सघात (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण), **छह** सस्थान (समचुतरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक), **छह** सहनन (वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक, असप्राप्तासृपाटिका), **पाँच** वर्ण (काला, पीला, नीला, लाल और सफेद), **दो** गन्ध (सुगन्ध और दुर्गन्ध), **पाँच** रस (खट्टा, मीठा, चरपरा, कडुआ और कषायला), **आठ** स्पर्श (हलका, भारी,

---

१. अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के भाव तथा स्वभाविक सरल परिणाम से **मनुष्यायु का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/१७–१८)**

२. सरागसयम, सयमासयम, सम्यग्दर्शन, अकामनिर्जरा और बालतप के भाव से **देवायु का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२०–२१)**

३. नामकर्म के मुख्यत दो भेद हैं – शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म। मन-वचन-काय के योगो में कुटिलता और विसवादन के भाव से **अशुभनामकर्म का बन्ध** होता है तथा इनसे विपरीतभाव से **शुभनामकर्म का बन्ध** होता है।

(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२२–२३)

रूखा, चिकना, ठण्डा, गरम, कठोर और नरम), **चार** आनुपूर्व्य (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव), **एक** अगुरुलघु, **एक** उपघात, **एक** परघात, **एक** आतप, **एक** उद्योत, **दो** विहायोगति (प्रशस्त और अप्रशस्त), **एक** उच्छ्वास, **एक** त्रस, **एक** स्थावर, **एक** बादर, **एक** सूक्ष्म, **एक** पर्याप्त, **एक** अपर्याप्त, **एक** प्रत्येक, **एक** साधारण, **एक** स्थिर, **एक** अस्थिर, **एक** शुभ, **एक** अशुभ, **एक** सुभग, **एक** दुर्भग, **एक** सुस्वर, **एक** दु स्वर, **एक** आदेय, **एक** अनादेय, **एक** यश कीर्ति, **एक** अयश कीर्ति और **एक** तीर्थङ्कर नामकर्म।

प्रश्न १६८ — गति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव का आकार नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के समान बनाता है, उसे **गति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १६९ — जाति किसे कहते हैं?

उत्तर — अव्यभिचारी सदृशता के कारण एकरूपता धारण करनेवाले विशेष को **जाति** कहते है अर्थात् जाति के द्वारा सदृश धर्मवाले पदार्थो का ग्रहण होता है।

प्रश्न १७० — जाति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय होता है, उसे **जाति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७१ — शरीर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव के साथ औदारिक आदि शरीर की रचना होती है, उसे **शरीर नामकर्म** कहते है।

प्रश्न १७२ — अङ्गोपाङ्ग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के हाथ, पैर आदि अङ्ग एव नासिका आदि उपाङ्ग बनते हैं, उन्हे **अङ्गोपाङ्ग नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७३ — निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के अङ्गोपाङ्गो की ठीक-ठीक रचना होती है, उसे **निर्माण नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७४ — बन्धन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरो के परमाणु परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त होते है, उसे **बन्धन नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७५ — सघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरो के परमाणु छिद्ररहित एकता को प्राप्त होते हैं, उसे **सघात नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७६ — सस्थान नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति बनती है, उसे **सस्थान नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १७७ — समचतुरस्र सस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर की आकृति कुशल शिल्पकार के द्वारा बनायी गयी सुन्दर मूर्ति के समान ऊपर, नीचे तथा बीच मे समभाग या समानुपात मे होती है, उसे **समचतुरस्र सस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १७८ — न्यग्रोधपरिमण्डल सस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वटवृक्ष की तरह होता है अर्थात् जिसके नाभि से नीचे के अङ्ग पतले और छोटे और उसके ऊपर के अङ्ग मोटे और बडे होते हैं, उसे **न्यग्रोधपरिमण्डल सस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १७९ — स्वाति सस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शाल्मलिवृक्ष के समान होता है अर्थात् जिसके नाभि से नीचे के अङ्ग मोटे और बडे और उसके ऊपर के अङ्ग पतले और छोटे होते हैं, उसे **स्वाति सस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८० — कुब्जक सस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबडा होता है, उसे **कुब्जक सस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८१ — वामन सस्थान किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बौना होता है, उसे **वामन सस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८२ — हुण्डक सस्थान किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय मे जीव का शरीर के अङ्गोपाङ्ग विषम आकृतिवाले हुण्ड के समान होते हैं अर्थात् किसी खास आकृतिवाले नहीं होते हैं, उसे **हुण्डक सस्थान** कहते हैं।

प्रश्न १८३ — संहनन नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर की हड्डियो का बन्धन विशेष होता है, उसे **संहनन नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १८४ — वज्रवृषभनाराच संहनन किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में वज्रमय हड्डियाँ, वज्रमय वेष्टन और वज्रमय कीलियाँ होती हैं, उसे **वज्रवृषभनाराच सहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८५ — वज्रनाराच संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर मे वज्रमय हड्डियाँ और

वज्रमय कीलियाँ होती हैं, परन्तु वेष्टन व्रजमय नहीं होते, उसे **वज्रनाराच सहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८६ — नाराच सहनन किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर मे वज्रमय विशेषण से रहित हड्डियॉ, वेष्टन और कीलियॉ होती हैं, उसे **नाराच संहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८७ — अर्द्धनाराच संहनन किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियों की सन्धियॉ अर्द्धकीलित होती हैं, उसे **अर्धनाराच सहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८८ — कीलक सहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित होती हैं, उसे **कीलक सहनन** कहते हैं।

प्रश्न १८९ — असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियाँ मात्र माँस, स्नायु आदि से लपेटकर सघटित की गयी होती हैं, उसे **असम्प्राप्तासृपाटिका सहनन** कहते हैं।

प्रश्न १९० — वर्ण नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर मे रङ्ग होता है, उसे **वर्ण नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९१ — गन्ध नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में गन्ध होती है, उसे **गन्ध नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९२ — रस नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर में रस होता है, उसे **रस नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९३ – स्पर्श नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर मे स्पर्श होता है, उसे **स्पर्श नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९४ – आनुपूर्वी नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से **विग्रहगति**[१] मे आत्मा के प्रदेशो का आकार पूर्व शरीर के आकार का रहता है, उसे **आनुपूर्वी नामकर्म** कहते हैं।[२]

प्रश्न १९५ – अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर, लोहे के गोले के समान भारी और आकवृक्ष के फूल के समान हलका नही होता है, उसे **अगुरुलघु नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९६ – उपघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर मे अपना ही घात करनेवाले अङ्गोपाङ्ग होते हैं, उसे **उपघात नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९७ – परघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर मे दूसरे का घात करनेवाले अङ्गोपाङ्ग होते हैं, उसे **परघात नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न १९८ – आतप नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर मे सूर्य के समान आतप (उष्णता) की प्राप्ति होती है, उसे **आतप नामकर्म** कहते हैं।

---

१ प्रश्न क्रमाङ्क २३८ देखो।

२ जिस कर्म के उदय से जीव का इच्छित गति मे गमन होता है उसे **आनुपूर्वी नामकर्म** कहते हैं। (– धवला ६/१,९१,२८/५६)

प्रश्न १९९ – उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर मे उद्योत होता है, उसे **उद्योत नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०० – विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीवो का आकाश मे गमन होता है, उसे **विहायोगति नामकर्म** कहते हैं। विहायोगति कर्म के प्रशस्त और अप्रशस्त – ऐसे दो भेद होते है।

प्रश्न २०१ – उच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर मे श्वासोच्छ्वास होता है, उसे **उच्छ्वास नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०२ – त्रस नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय आदि पर्यायो मे जन्म होता है, उसे **त्रस नामकर्म** कहते हैं।[1]

प्रश्न २०३ – स्थावर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति पर्याय मे जन्म होता है, उसे **स्थावर नामकर्म** कहते हैं।[2]

प्रश्न २०४ – पर्याप्ति अथवा पर्याप्त नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसके कर्म के उदय से अपने-अपने योग्य आहार आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण होती है, अथवा जिस कर्म के उदय से जीव

---

१ जिस कर्म के उदय से जीव का गमन-आगमन भाव होता है, उसे **त्रस नामकर्म** कहते है। **(– धवला १३/५,५,१०१/३६५)**

२ जिस कर्म के उदय से जीव स्थावरपने को प्राप्त होता है, उसे **स्थावर नामकर्म** कहते हैं। **(– धवला ६/१,९१,२८/६१)**

पर्याप्त होता है, उसे **पर्याप्ति अथवा पर्याप्त नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०५ – पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर – आहारवर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओ को आहार, शरीर, इन्द्रिय आदिरूप परिणमित कराने की जीव की शक्ति की पूर्णता को **पर्याप्ति** कहते हैं।

प्रश्न २०६ – पर्याप्तियों के कितने भेद हैं?

उत्तर – पर्याप्तियो के छह भेद हैं –

१. **आहारपर्याप्ति** – आहारवर्गणा के परमाणुओ को खल और रसभागरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **आहारपर्याप्ति** कहते हैं।

२. **शरीरपर्याप्ति** – जिन परमाणुओं को खलभागरूप परिणमित किया था, उनसे हड्डी आदि कठिन अवयवरूप और जिनको रसभागरूप परिणमित किया था, उनसे रुधिर आदि द्रवरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **शरीरपर्याप्ति** कहते हैं।

३. **इन्द्रियपर्याप्ति** – आहारवर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रिय के आकाररूप परणिमित कराने तथा इन्द्रिय द्वारा विषय-ग्रहण करने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **इन्द्रियपर्याप्ति** कहते हैं।

४. **श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति** – आहारवर्गणा के परमाणुओं को श्वासोच्छ्वासरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति** कहते हैं।

५. **भाषापर्याप्ति** – भाषावर्गणा के परमाणुओं को वचनरूप परिणमित कराने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **भाषा-पर्याप्ति** कहते हैं।

६. **मन:पर्याप्ति** – मनोवर्गणा के परमाणुओं को हृदयस्थान मे आठ पाँखुरी के कमलाकार मनरूप परिणमित कराने को तथा उसके द्वारा यथावत् विचार करने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को **मन:पर्याप्ति** कहते हैं।

एकेन्द्रिय जीवो मे भाषा और मन के बिना चार पर्याप्तियॉ होती हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवो मे मन के बिना पॉच पर्याप्तियॉ होती हैं। सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवो मे सभी छह पर्याप्तियाँ होती हैं। इन सब पर्याप्तियों के पूर्ण होने का काल अन्तर्मुहूर्त है, वहॉ एक-एक पर्याप्ति के पूर्ण होने का काल भी अन्तर्मुहूर्त है और सबका मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त है। तथा पहले से दूसरे का, दूसरे से तीसरे का, इसी तरह छठवीं पर्याप्ति तक का काल, क्रम से बडा-बडा अन्तर्मुहूर्त है। अपने-अपने योग्य पर्याप्तियो का प्रारम्भ तो एक साथ होता है, किन्तु पूर्णता क्रम से होती है।

जब तक किसी जीव की शरीर-पर्याप्ति पूर्ण तो न हो, लेकिन नियम से पूर्ण होनेवाली हो, तब तक उस जीव को **निर्वृत्त्यपर्याप्तक** कहते हैं। जिसकी शरीर-पर्याप्ति पूर्ण हो, उसे **पर्याप्तक** कहते हैं।

प्रश्न २०७ – अपर्याप्ति, अपर्याप्त अथवा लब्ध्यपर्याप्त नामकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करके, श्वास के अठारहवे भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त काल में ही मरण को प्राप्त होते हैं, उसे **अपर्याप्ति, अपर्याप्त अथवा लब्ध्यपर्याप्त** नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०८ – प्रत्येक नामकर्म किसे कहते है?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो, उसे **प्रत्येक नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २०९ — साधारण नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हो, उसे **साधारण नामकर्म** कहते है?

प्रश्न २१० (अ) — स्थिर नामकर्म किसे कहते हैं।

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने-अपने स्थान पर रहते हैं, उसे **स्थिर नामकर्म** कहते है।

प्रश्न २१०(ब) — अस्थिर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने-अपने स्थान पर नही रहते है, उसे **अस्थिर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २११ — शुभ नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव सुन्दर (शोभन) होते हैं, उसे **शुभ नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१२ — अशुभ नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव असुन्दर (अशोभन) होते है, उसे **अशुभ नामकर्म** कहते है।

प्रश्न २१३ — सुभग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से (मुझसे) प्रीति करते है, उसे **सुभग नामकर्म** कहते है।

प्रश्न २१४ — दुर्भग नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से (मुझसे) अप्रीति करते है, उसे **दुर्भग नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१५ — सुस्वर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से स्वर अच्छा होता है, उसे **सुस्वर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१६ — दुःस्वर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से स्वर अच्छा नहीं होता है, उसे **दुःस्वर नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१७ — आदेय नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से कान्तिमान शरीर उत्पन्न होता है, उसे **आदेय नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २१८ — अनादेय नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से कान्तिमान शरीर नहीं होता है, उसे **अनादेय नामकर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न २१९ — यश कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की प्रशंसा होती है, उसे **यश कीर्ति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२० — अयश कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की प्रशंसा नहीं होती है, उसे **अयश कीर्ति नामकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२१ — तीर्थङ्कर नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस कर्म के उदय से तीर्थङ्कर पद प्राप्त होता है, उसे

---

१ अथवा जिस कर्म के उदय से सरागी जीवों के बहुमान्यता उत्पन्न होती है उसे **आदेय नामकर्म** कहते है. उससे विपरीतभाव का उत्पन्न करनेवाला **अनादेय नामकर्म** है।

(— धवला ६/१,९१,२८/६५)

तीर्थङ्कर नामकर्म कहते हैं।[१]

प्रश्न २२२ – गोत्रकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से उच्च, नीच गोत्र या कुल का व्यवहार होता है, उसे **गोत्रकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२३ – गोत्रकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – गोत्रकर्म के **दो** भेद हैं – उच्च गोत्र और नीच गोत्रकर्म।

---

१. दर्शनविशुद्धि, विनय-सम्पन्नता, शील और व्रतों का निरतिचार पालन, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, सवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्य, अर्हद्-भक्ति, आचार्य-भक्ति, उपाध्याय-भक्ति, प्रवचन-भक्ति, आवश्यकों का दृढता से पालन, मार्ग-प्रभावना, और प्रवचन वात्सल्य – इन सोलहकारण भावनाओ को विशेषतया भाने से **तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध** होता है – यह प्रकृति एक बार बॅधना शुरु होने पर निरन्तर बॅधती रहती है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२४)**

जो धर्मतीर्थ अर्थात् मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, समवसरण आदि विभूतियों से सहित होते हैं और जिनके तीर्थङ्कर नामकर्म का उदय होता है, उन्हें **तीर्थङ्कर** कहते हैं। **(– बालबोध पाठमाला, भाग १, पाठ ३)**

भरत और ऐरावतक्षेत्र के चतुर्थकाल में २४ तीर्थङ्कर होते हैं तथा विदेहक्षेत्र मे सदाकाल कम से कम २० और अधिक से अधिक १६० तीर्थङ्कर होते हैं। वर्तमान चौबीसी के अजितनाथ तीर्थङ्कर के समय एकसाथ १७० तीर्थङ्कर हुए थे अर्थात् ढाईद्वीप में कुल पॉच भरतक्षेत्र, पॉच ऐरावतक्षेत्र और पॉच विदेहक्षेत्रों के १६० नगरों मे सभी जगह एक-एक तीर्थङ्कर थे। भरत और ऐरावतक्षेत्र के तीर्थङ्कर पॉच कल्याणकवाले ही होते हैं, जबकि विदेहक्षेत्र के तीर्थङ्कर दो, तीन या पॉच कल्याणकवाले होते हैं। भरत-ऐरावतक्षेत्र के तीर्थङ्करों के चार अनन्त चतुष्टय के साथ ४२ बाह्य गुण होते हैं। प्रत्येक तीर्थङ्कर का शासन चलता है, अत ये आप्त भी कहलाते हैं। तीर्थङ्कर जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं। आगम को भी तीर्थ कहा जाता है, उसके मूलग्रन्थकर्ता तीर्थङ्कर भगवान ही कहलाते हैं। तीर्थङ्करों का आहार तो होता है, परन्तु निहार नहीं होता, उनके दाढ़ी-मूछ नहीं होती, परन्तु शिर पर बाल होते हैं। उनका शरीर निगोद से रहित होता है। एक स्थान पर दो तीर्थङ्कर एक साथ कभी नहीं होते। **(– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, पृष्ठ ३७३)**

प्रश्न २२४ – उच्च गोत्रकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से लोकमान्य गोत्र या कुल मे जन्म होता है, उसे **उच्च गोत्रकर्म** कहते हैं।[१]

प्रश्न २२५ – नीच गोत्रकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से लोकनिन्द्य गोत्र या कुल मे जन्म होता है, उसे **नीच गोत्रकर्म** कहते हैं।[२]

प्रश्न २२६ – अन्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जिम कर्म के उदय से दान आदि मे विघ्न होता है, उसे **अन्तरायकर्म** कहते हैं।[३]

प्रश्न २२७ – अन्तरायकर्म के कितने भेद है?

उत्तर – अन्तरायकर्म के पाँच भेद हैं – दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय कर्म।

प्रश्न २२८ – पुण्यकर्म किसे कहते है?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है, उसे **पुण्यकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २२९ – पापकर्म किसे कहते है?

---

१. दूसरे की प्रशसा और अपनी निन्दा, दूसरे के गुणो को प्रगट करने और अपने गुणो को छिपाने के भावों से तथा विनम्रता और मद के अभाव से **उच्च गोत्रकर्म का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२६)**

२. दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा, दूसरे के विद्यमान गुणों को छिपाने और अपने अप्रगट गुणो को प्रगट करने के भावों से **नीच गोत्रकर्म का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२७)**

३. दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न करने के भाव से **अन्तरायकर्म का बन्ध** होता है। **(– तत्त्वार्थसूत्र ६/२७)**

उत्तर — जिस कर्म के उदय से जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है, उसे **पापकर्म** कहते है।

प्रश्न २३० — घातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के ज्ञान आदि अनुजीवी गुणो को घातते है, उन्हे **घातिकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३१ — अघातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के ज्ञान आदि अनुजीवी गुणो को नही घातते है, उन्हे **अघातिकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३२ — सर्वघातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के अनुजीवी गुणो को पूर्णतया घातते है, उन्हे **सर्वघातिकर्म** कहते हैं। कर्म या प्रकृति एकार्थवाची हैं। जैसे — सर्वघातिकर्म या सर्वघातिप्रकृति।

प्रश्न २३३ — देशघातिकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो कर्म, जीव के अनुजीवी गुणो को एकदेश घातते हैं, उन्हे **देशघातिकर्म** कहते है।

प्रश्न २३४ — जीव-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मो का फल जीव मे होता है, उन्हे **जीव-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३५ — पुद्गल-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मो का फल पौद्गलिक शरीर आदि मे होता है, उन्हे **पुद्गल-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३६ — भव-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मो के फल से जीव नरक आदि भवो मे रुकता है, उन्हे **भव-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३७ — क्षेत्र-विपाकीकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन कर्मों के फल से विग्रहगति मे जीव का आकार पूर्व भव के समान बना रहता है, उन्हे **क्षेत्र-विपाकीकर्म** कहते हैं।

प्रश्न २३८ — विग्रहगति किसे कहते हैं?

उत्तर — एक शरीर को छोडकर दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिए जीव का जो गमन होता है, उसे **विग्रहगति** कहते हैं।

प्रश्न २३९ — घातिकर्म कितने और कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — घातिकर्म **सैंतालीस** है — ज्ञानावरण-५, दर्शनावरण-९, मोहनीय-२८ और अन्तराय-५ = कुल ४७ **घातिकर्म**।

प्रश्न २४० — अघातिकर्म कितने और कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — अघातिकर्म **एक सौ एक** हैं — वेदनीय-२, आयु-४, नाम-९३ और गोत्र-२।

प्रश्न २४१ — सर्वघाति प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर — सर्वघातिकर्म या प्रकृतियॉ **इक्कीस** है — ज्ञानावरण-१ (केवलज्ञानावरण), दर्शनावरण-६ (केवलदर्शनावरण एक और निद्रा आदि पॉच), मोहनीय-१४ (अनन्तानुबन्धी-४, अप्रत्याख्यानावरण-४, प्रत्याख्यानावरण-४, मिथ्यात्व-१ और सम्यक्-मिथ्यात्व-१)।

प्रश्न २४२ — देशघाति प्रकृतियॉ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर — देशघातिकर्म या प्रकृतियॉ **छब्बीस** हैं — ज्ञानावरण-४ (मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मन पर्यय-ज्ञानावरण), दर्शनावरण-३ (चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण), मोहनीय-१४ (सज्वलन-४, नोकषाय-९, सम्यक्त्व-१), अन्तराय-५।

प्रश्न २४३ – क्षेत्र-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – क्षेत्र-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **चार** हैं – नरक-गत्यानुपूर्वी, तिर्यक्-गत्यानुपूर्वी, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी और देव-गत्यानुपूर्वी।

प्रश्न २४४ – भव-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी है?

उत्तर – भव-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **चार** हैं – नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु।

प्रश्न २४५ – जीव-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी है?

उत्तर – जीव-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **अठहत्तर** हैं – सभी घातिकर्म-४७, गोत्रकर्म-२, वेदनीयकर्म-२ और नामकर्म-२७ (तीर्थङ्कर प्रकृति-१, उच्छ्वास-१, बादर-१, सूक्ष्म-१, पर्याप्ति-१, अपर्याप्ति-१, सुस्वर-१, दु स्वर-१, आदेय-१, अनादेय-१, यश कीर्ति-१, अयश कीर्ति-१, त्रस-१, स्थावर-१, सुभग-१, दुर्भग-१, विहायोगति-२, गति-४, जाति-५)।

प्रश्न २४६ – पुद्गल-विपाकी प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी हैं?

उत्तर – पुद्गल-विपाकी कर्म या प्रकृतियाँ **बासठ** हैं – कुल १४८ प्रकृतियो में से क्षेत्र-विपाकी-४, भव-विपाकी-४, जीव-विपाकी-७८ – इस प्रकार सब मिलाकर ८६ प्रकृतियाँ घटाने पर, शेष ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल-विपाकी हैं।

पुद्गल-विपाकी प्रकृतियाँ सिर्फ नामकर्म मे ही हैं। नामकर्म की कुल ९३ प्रकृतियों में जीव-विपाकी-२७ और क्षेत्र-विपाकी-४ (कुल-३१)

घटाने पर शेष ६२ प्रकृतियाँ पुद्गल-विपाकी हैं, जो इसप्रकार हैं — शरीर-५, बन्धन-५, संघात-५, संस्थान-६, संहनन-६, अङ्गोपाङ्ग-३, वर्ण-५, गन्ध-२, रस-५, स्पर्श-८, अगुरुलघु-१, उपघात-१, परघात-१, आतप-१, उद्योत-१, निर्माण-१, प्रत्येक-१, साधारण-१, स्थिर-१, अस्थिर-१, शुभ-१ और अशुभ-१।

प्रश्न २४७ — पाप-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौनसी है?

उत्तर — पाप-प्रकृतियाँ **सौ** हैं — घातिकर्म की सभी-४७, असातावेदनीय-१, नीच-गोत्र-१, नरकायु-१ और नामकर्म-५० (नरकगति-१, नरकगत्यापूर्वी-१, तिर्यगगति-१, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी-१, शुरू की जाति-४, अन्त के संस्थान-५, अन्त के संहनन-५, अप्रशस्तस्पर्श-८, अप्रशस्तरस-५, अप्रशस्तगन्ध-२, अप्रशस्तवर्ण-५, उपघात-१, अप्रशस्त-विहायोगति-१, स्थावर-१, सूक्ष्म-१, अपर्याप्त-१, अनादेय-१, अयश कीर्ति-१, अशुभ-१, दुर्भग-१, दु स्वर-१, अस्थिर-१, और साधारण-१)।

प्रश्न २४८ — पुण्य-प्रकृतियाँ कितनी और कौनसी है?

उत्तर — पुण्य-प्रकृतियाँ **अड़सठ** हैं। कर्म की समस्त प्रकृतियाँ १४८ हैं, उनमें नामकर्म की २० स्पर्शादि प्रकृतियाँ पुण्य और पाप दोनो मे गिनी जाती हैं, क्योकि बीसो ही स्पर्शादि किसी को इष्ट, किसी को अनिष्ट होती हैं, इसलिए कुल प्रकृतियाँ १६८ हुई, इन से १०० पाप-प्रकृतियाँ घटाने पर ६८ पुण्य-प्रकृतियाँ शेष रहती हैं —

साता वेदनीय-१, उच्च गोत्र-१, नरकायु के अतिरिक्त आयु-३, मनुष्यगति-१, मनुष्यगत्यानुपूर्वी-१, देवगति-१, देवगत्यानुपूर्वी-१, शरीर-५, बन्धन-५, संघात-५, पञ्चेन्द्रिय जाति-१, समचतुरस्रसंस्थान-१, वज्रर्षभनाराचसंहनन-१, अङ्गोपाङ्ग-३, प्रशस्तस्पर्श-८, प्रशस्तरस-५,

प्रशस्तगन्ध-२, प्रशस्तवर्ण-५, प्रशस्तविहायोगति-१, अगुरुलघु-१, परघात-१, उच्छ्वास-१, उद्योत-१, आतप-१, त्रस-१, बादर-१, पर्याप्त-१, प्रत्येक-१, स्थिर-१, शुभ-१, सुभग-१, सुस्वर-१, निर्माण-१, आदेय-१, यशःकीर्ति-१ और तीर्थङ्करप्रकृति-१।

२.२ स्थितिबन्ध

प्रश्न २४९ – स्थितिबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर – कर्मों के आत्मा के साथ रहने की काल मर्यादा को **स्थितिबन्ध** कहते हैं।[1]

प्रश्न २५० – आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी-कितनी है?

उत्तर – आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति इसप्रकार है – ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की तीस-तीस कोड़ा-कोड़ी सागर, मोहनीयकर्म की सत्तर कोड़ा-कोडी सागर, नाम और गोत्रकर्म की बीस-बीस कोडा-कोड़ी सागर और आयुकर्म की तेतीस सागर।

प्रश्न २५१ – आठों कर्मों की जघन्य स्थिति कितनी-कितनी है?

उत्तर – आठों कर्मों की जघन्य स्थिति इसप्रकार है – वेदनीय की बारह मुहूर्त, नाम तथा गोत्र की आठ-आठ मुहूर्त और शेष समस्त कर्मों की अन्तर्मुहूर्त।

प्रश्न २५२ – एक कोड़ा-कोड़ी किसे कहते हैं?

उत्तर – एक करोड़ को एक करोड़ से गुना करने पर जो सख्या प्राप्त होती है, उसे **एक कोड़ा-कोड़ी** कहते हैं।

---

१. योग के निमित्त से कर्मस्वरूप से परिणत पुद्गलस्कन्धों का, कषाय के निमित्त से जीव के साथ एकस्वरूप होकर रहने के काल को **स्थितिबन्ध** कहते हैं।

(– धवला, ६/१,९.६,२/१४६)

प्रश्न २५३ – सागर किसे कहते हैं?

उत्तर – दश कोड़ा-कोड़ी अद्धा पल्यो का एक **सागर** होता है।

प्रश्न २५४ – अद्धा पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर – दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौड़े गड्ढे में, कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके – ऐसे उत्तम भोगभूमि के सात दिन तक की आयु के मेंढे के बच्चे के बालों को ठसाठस भरना। उसमे जितने बाल समाये, उनमे से एक-एक बाल को सौ-सौ वर्ष बाद निकालना। जितने समय मे वह गड्ढा खाली हो जाये, उतने समय को एक **व्यवहार पल्य** कहते हैं। एक व्यवहार पल्य से असख्यात गुना बड़ा एक **उद्धार पल्य** होता है तथा एक उद्धार पल्य से असख्यात गुना बड़ा एक **अद्धा पल्य** होता है।

प्रश्न २५५ – मुहूर्त किसे कहते हैं?

उत्तर – अड़तालीस मिनिट का एक **मुहूर्त** होता है।

प्रश्न २५६ – अन्तर्मुहूर्त किसे कहते हैं?

उत्तर – आवली से ऊपर और मुहूर्त से एक समय कम तक काल को **अन्तर्मुहूर्त** कहते हैं।

प्रश्न २५७ – आवली किसे कहते हैं?

उत्तर – एक उच्छ्वास मे सख्यात **आवली** होती हैं।

प्रश्न २५८ – उच्छ्वास काल किसे कहते हैं?

उत्तर – नीरोगी पुरुष की नाड़ी के एक बार चलने के काल को **उच्छ्वास काल** कहते हैं।

प्रश्न २५९ – एक मुहूर्त में कितने उच्छ्वास होते हैं?

उत्तर – एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) **उच्छ्वास** होते हैं।

२.३ अनुभागबन्ध

प्रश्न २६० – अनुभागबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर – कर्मों की फल देनेरूप हीनाधिक शक्ति को **अनुभागबन्ध** कहते हैं।

२.४ प्रदेशबन्ध

प्रश्न २६१ – प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर – बॅधने वाले कर्मों के परमाणुओ के परिमाण को **प्रदेशबन्ध** कहते हैं।

२.५ कर्मों की विभिन्न अवस्थाएँ

प्रश्न २६२ – उदय किसे कहते हैं?

उत्तर – स्थिति के अनुसार कर्म के फल देने को **उदय** कहते हैं।

प्रश्न २६३ – उदीरणा किसे कहते हैं?

उत्तर – स्थिति पूर्ण होने के पूर्व ही कर्म के फल देने को **उदीरणा** कहते हैं।

प्रश्न २६४ – उपशम किसे कहते हैं?

उत्तर – द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के निमित्त से कर्म की शक्ति का प्रगट नहीं होना, **उपशम** कहलाता है।

प्रश्न २६५ – उपशम के कितने भेद हैं?

उत्तर – उपशम के दो भेद हैं – अन्तरकरणरूप उपशम और सदवस्थारूप उपशम।

प्रश्न २६६ – अन्तरकरणरूप उपशम किसे कहते है?

उत्तर – आगामी काल मे उदय आने योग्य कर्म-परमाणुओ को आगे-पीछे उदय आने योग्य करना, **अन्तरकरणरूप उपशम कहलाता** है।

प्रश्न २६७ — सदवस्थारूप उपशम किसे कहते हैं?

उत्तर — वर्तमान अवस्था को छोडकर आगामी काल में उदय आनेवाले कर्मों का सत्ता मे रहना, **सदवस्थारूप उपशम** कहलाता है।

प्रश्न २६८ — क्षय किसे कहते है?

उत्तर — कर्म की आत्यन्तिक निवृत्ति को **क्षय** कहते हैं।

प्रश्न २६९ — क्षयोपशम किसे कहते हैं?

उत्तर — किसी कर्म के वर्तमान निषेक मे सर्वघाति स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा देशघाति स्पर्द्धकों का उदय और आगामी काल मे उदय आनेवाले कर्म के निषेको का सदवस्थारूप उपशम — ऐसी उस कर्म की अवस्था को **क्षयोपशम** कहते हैं।

प्रश्न २७० — निषेक किसे कहते हैं?

उत्तर — एक समय में कर्म के जितने परमाणु उदय मे आते हैं, उन सबके समूह को **निषेक** कहते हैं।

प्रश्न २७१ — स्पर्द्धक किसे कहते हैं?

उत्तर — अनेक प्रकार की अनुभाग शक्ति से युक्त कार्मण वर्गणाओ के समूह को **स्पर्द्धक** कहते हैं।

प्रश्न २७२ — वर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — वर्गों के समूह को **वर्गणा** कहते हैं।

प्रश्न २७३ — वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर — समान अविभाग प्रतिच्छेदों के धारक प्रत्येक कर्म-परमाणु को **वर्ग** कहते हैं।

प्रश्न २७४ — अविभाग प्रतिच्छेद किसे कहते है?

उत्तर — शक्ति के अविभागी अंश को **अविभाग प्रतिच्छेद** कहते हैं।

प्रश्न २७५ – इस प्रकरण में 'शक्ति' शब्द से कौन-सी शक्ति इष्ट है?

उत्तर – यहाँ शक्ति शब्द से कर्मों की अनुभागरूप अर्थात् फल देने की शक्ति इष्ट है।

प्रश्न २७६ – उदयाभावी क्षय किसे कहते है?

उत्तर – बिना फल दिये आत्मा से कर्म का सम्बन्ध छूटना, **उदयाभावी क्षय** कहलाता है।

प्रश्न २७७ – उत्कर्षण किसे कहते है?

उत्तर – कर्मों की स्थिति एव अनुभाग का बढना, **उत्कर्षण** कहलाता है।

प्रश्न २७८ – अपकर्षण किसे कहते हैं?

उत्तर – कर्म की स्थिति एव अनुभाग का घटना, **अपकर्षण** कहलाता है।

प्रश्न २७९ – सक्रमण किसे कहते है?[१]

उत्तर – किसी कर्म का सजातीय एक भेद से दूसरे भेदरूप हो जाना, **संक्रमण** कहलाता है।

प्रश्न २८० – समय-प्रबद्ध किसे कहते है?

उत्तर – एक समय मे जितने कर्म परमाणु और नोकर्म परमाणु

---

१. प्रश्न – निधत्त किसे कहते हैं?

उत्तर – जो कर्म उदयावली में आने तथा अन्य प्रकृतिरूप सक्रमण होने के योग्य नहीं होता है, उसे **निधत्त** कहते हैं।

प्रश्न – निकाचित किसे कहते हैं?

उत्तर – जो कर्म उदयावली में आने, अन्य प्रकृतिरूप सक्रमण होने तथा उत्कर्षण-अपकर्षण करने के योग्य नहीं होता है, उसे **निकाचित** कहते हैं।

(– गोम्मटसार कर्मकाण्ड, जीवतत्त्व प्रदीपिका, ४४०)

बॅधते हैं, उन सबको **समय-प्रबद्ध** कहते हैं।

प्रश्न २८१ — गुण-हानि किसे कहते हैं?

उत्तर — गुणाकाररूप हीन-हीन द्रव्य (परमाणु) जिसमें पाये जाते हैं, उसे **गुण-हानि** कहते हैं। जैसे — किसी जीव ने एक समय में ६३०० (त्रेसठ सौ) परमाणुओ के समूहरूप समयप्रबद्ध का बन्ध किया और उसमें ४८ समय की स्थिति पडी, उसमें गुण-हानियो के समूहरूप नाना गुण-हानि की सख्या छह है — उसमें से प्रथम गुण-हानि के परमाणु ३२००, दूसरी के १६००, तीसरी के ८००, चौ^ के ४००, पॉचवीं के २००, छठवीं के १०० हैं। यहॉ उत्तरोत्तर गुण-हानियो मे गुणाकाररूप हीन-हीन परमाणु (द्रव्य) पाये जाते हैं, इसलिए इसको **गुण-हानि** कहते हैं।

प्रश्न २८२ — गुण-हानि आयाम किसे कहते है?

उत्तर — एक गुण-हानि के समयो को **गुण-हानि आयाम** कहते हैं। जैसे — ऊपर के दृष्टान्त में ४८ समय की स्थिति में गुण-हानि की सख्या है। ४८ में ६ का भाग देने से प्रत्येक गुण-हानि का परिमाण ८ आया। यही **गुण-हानि आयाम** कहलाता है।

प्रश्न २८३ — नाना गुण-हानि किसे कहते है?

उत्तर — गुण-हानियों के समूह को **नाना गुण-हानि** कहते हैं। जैसे — ऊपर के दृष्टान्त मे आठ-आठ समय की छह गुण-हानि हैं। इस छह की सख्या को **नाना गुण-हानि** का परिमाण जानना चाहिए।

प्रश्न २८४ — अन्योन्याभ्यस्त राशि किसे कहते हैं।

उत्तर — नाना गुण-हानि की सख्या के बराबर ०२ की सख्या रखकर, उनका परस्पर गुणाकार करने से जो गुणन-फल प्राप्त होता है, उसे **अन्योन्याभ्यस्त राशि** कहते हैं। जैसें — ऊपर के दृष्टान्त में नाना

गुण-हानि की सख्या ६ है, अत ६ बार २ की सख्या रखकर उनका परस्पर गुणा करने से अर्थात् २ × २ × २ × २ × २ × २ = ६४ की सख्या प्राप्त होती है, इसे ही **अन्योन्याभ्यस्त राशि** का परिमाण जानना चाहिए अथवा

अन्योन्याभ्यस्त राशि = $२^{\text{नानागुण-हानि}}$। जैसे — ६४ = $२^{६}$

प्रश्न २८५ — अन्तिम गुण-हानि के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार से निकलता है?

उत्तर — समय-प्रबद्ध मे एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशि का भाग देने पर **अन्तिम गुण-हानि के द्रव्य का परिमाण** निकलता है। जैसे — ६३०० मे एक कम ६४ अर्थात् ६४ — १ = ६३ का भाग देने से १०० की सख्या मिलती है, यही अन्तिम गुण-हानि का द्रव्य है।

प्रश्न २८६ — अन्य गुण-हानियों के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार निकलता है?

उत्तर — अन्तिम गुण-हानि के द्रव्य को प्रथम गुण-हानि पर्यन्त दूना-दूना करने से अन्य गुण-हानियों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे — २००, ४००, ८००, १६००, ३२००।

प्रश्न २८७ — प्रत्येक गुण-हानि में प्रथमादि समयो के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार होता है?

उत्तर — निषेकहार को चय से गुणा करने पर प्रत्येक गुण-हानि के प्रथम समय का द्रव्य निकलता है और प्रथम समय के द्रव्य में से एक-एक चय घटाने से उत्तरोत्तर समयो के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे — निषेकहार १६ को चय ३२ से गुणा करने पर प्रथम गुणहानि के प्रथम समय का द्रव्य ५१२ होता है और ५१२ मे से एक-एक चय अर्थात् बत्तीस घटाने से दूसरे समय के द्रव्य का परिमाण ४८०, तीसरे

का ४४८, चौथे का ४१६, पाँचवे का ३८४, छठवे का ३५२, सातवे का ३२० और आठवें का २८८ निकलता है। इसीप्रकार द्वितीयादि गुण-हानियो मे भी प्रथमादि समयो के द्रव्य का परिमाण निकाल लेना चाहिए।

प्रश्न २८८ — निषेकहार किसे कहते हैं?

उत्तर — गुण-हानि आयाम से दुगुने परिमाण को **निषेकहार** कहते हैं। जैसे — ऊपर के दृष्टान्त मे गुण-हानि आयाम ८ से दुगुने १६ को **निषेकहार** कहते हैं।

प्रश्न २८९ — चय किसे कहते है?

उत्तर — श्रेणी-व्यवहार गणित मे समान हानि या समान वृद्धि के परिमाण को **चय** कहते हैं।

प्रश्न २९० — इस प्रकरण मे गुण-हानि के चय का परिमाण निकालने की क्या रीति है?

उत्तर — निषेकहार मे एक अधिक गुण-हानि आयाम का परिमाण जोडकर आधा करने से जो लब्ध आवे, उसको गुण-हानि आयाम से गुणा करे। इस प्रकार गुणा करने से जो गुणनफल होता है, उसका भाग विवक्षित गुण-हानि के द्रव्य मे देने से विवक्षित **गुण-हानि के चय का परिमाण** निकलता है। जैसे — निषेकहार १६ मे एक अधिक गुण-हानि-आयाम ९ जोडने से २५ हुए। पच्चीस के आधे १२ ५ को गुण-हानि आयाम ८ से गुणाकार करने से १०० होते हैं। इस १०० का भाग विवक्षित प्रथम गुणहानि के द्रव्य ३२०० मे देने से प्रथम गुण-हानि सम्बन्धी चय ३२ आया। इसी प्रकार द्वितीय गुण-हानि के चय का परिमाण १६, तृतीय का ८, चतुर्थ का ४, पञ्चम का २ और अन्तिम का १ जानना चाहिए।

प्रश्न २९१ — अनुभाग की रचना का क्रम क्या है?

उत्तर — द्रव्य की अपेक्षा से जो रचना ऊपर बतायी गयी है, उसमे प्रत्येक गुण-हानि के प्रथमादि समय सम्बन्धी द्रव्य-समूह को **वर्गणा** कहते हैं और उन वर्गणाओ मे जो परमाणु हैं, उनको **वर्ग** कहते हैं। — प्रश्न २८७ के उदाहरण के अनुसार प्रथम गुण-हानि के प्रथम वर्गणा मे जो ५१२ वर्ग हैं, उनमे अनुभागशक्ति के अविभाग-प्रतिच्छेद समान हैं और वे द्वितीयादि वर्गणाओ के वर्गों के अविभाग-प्रतिच्छेदो की अपेक्षा सबसे न्यून अर्थात् जघन्य हैं।

द्वितीयादि वर्गणा के वर्गों मे एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद की अधिकता के क्रम मे जिस वर्गणा पर्यन्त एक-एक अविभाग-प्रतिच्छेद बढते हैं, वहाँ तक की वर्गणाओ के समूह का नाम एक **स्पर्द्धक** है और जिस वर्गणा के वर्गों में युगपत् अनेक अविभाग-प्रतिच्छेदो की वृद्धि होकर प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग-प्रतिच्छेदो की सख्या से दुगुनी सख्या हो जाती है, वहाँ से दूसरे स्पर्द्धक का प्रारम्भ समझना चाहिए।

इस ही प्रकार जिन-जिन वर्गणाओ के वर्गों मे प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभाग-प्रतिच्छेदो की सख्या से तिगुने, चौगुने आदि अविभाग-प्रतिच्छेद होते हैं, वहाँ से तीसरे, चौथे आदि स्पर्द्धकों का प्रारम्भ समझना चाहिए। इस प्रकार एक गुण-हानि मे अनेक स्पर्द्धक होते हैं।

२.६ आस्रव

प्रश्न २९२ — आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर — बन्ध के कारण को **आस्रव** कहते हैं।

प्रश्न २९३ — आस्रव के कितने भेद हैं?[1]

उत्तर — आस्रव के चार भेद हैं — १- द्रव्यबन्ध का निमित्त कारण, २- द्रव्यबन्ध का उपादान कारण, ३- भावबन्ध का निमित्त

---

१. प्रश्न क्रमाङ्क ३११ भी देखें।

कारण और ४- भावबन्ध का उपादान कारण।

प्रश्न २९४ — कारण किसे कहते है?

उत्तर — कार्य की उत्पादक सामग्री को **कारण** कहते हैं।

प्रश्न २९५ — कारण के कितने भेद है?

उत्तर — कारण के **दो** भेद हैं — ममर्थकारण और असमर्थकारण।

प्रश्न २९६ — समर्थकारण किसे कहते है?

उत्तर — प्रतिबन्ध के अभावसहित सहकारी समस्त सामग्रियो के सद्भाव को **समर्थकारण** कहते हैं। समर्थकारण के होने पर अनन्तर समय मे कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है।

प्रश्न २९७ — असमर्थकारण किसे कहते है?

उत्तर — भिन्न-भिन्न प्रत्येक सामग्री को **असमर्थकारण** कहते हैं। असमर्थकारण कार्योत्पत्ति का नियामक नहीं है।

प्रश्न २९८ — सहकारी सामग्री के कितने भेद है?

उत्तर — सहक री सामग्री के **दो** भेद हैं — निमित्तकारण और उपादानकारण।[१]

प्रश्न २९९ — निमित्तकारण किसे कहते है?[२]

उत्तर — जो पदार्थ स्वय कार्यरूप नहीं परिणमता है, किन्तु कार्य की उत्पत्ति मे सहायक होता है, उसे **निमित्तकारण** कहते हैं। जैसे — घट

---

१. **उपादान निजशक्ति है, जिय को मूल स्वभाव।**
है निमित्त परयोग तै, बन्यो अनादि बनाव।।
(—उपादान-निमित्त संवाद, भैया भगवतीदास, छन्द ३)

२ जो पदार्थ स्वय तो कार्यरूप नहीं परिणमता, परन्तु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आता है, उसे **निमित्तकारण** कहते हैं। जैसे घट की उत्पत्ति में कुम्भकार, दण्ड, चक्र आदि। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १४९)**

की उत्पत्ति मे कुम्भकार, दण्ड, चक्र आदि।

प्रश्न ३०० — उपादानकारण किसे कहते है?

उत्तर — जो पदार्थ स्वय कार्यरूप परिणमता है, उसे **उपादानकारण** कहते हैं। जैसे — घट की उत्पत्ति मे मिट्टी। अनादिकाल से द्रव्य मे जो पर्यायो का प्रवाह चला आ रहा है, उसमे अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय उपादानकारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती पर्याय कार्य है।[१]

प्रश्न ३०१ — द्रव्यबन्ध किसे कहते है?

उत्तर — कार्मण स्कन्धरूप पुद्गलद्रव्य का आत्मा के साथ एक-क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध होने को **द्रव्यबन्ध** कहते हैं।

प्रश्न ३०२ - भावबन्ध किसे कहते है?

उत्तर — आत्मा के योग-कषायरूप भावो को **भावबन्ध** कहते हैं।

प्रश्न ३०३ — द्रव्यबन्ध का निमित्त कारण क्या है?

उत्तर — आत्मा के योग-कषायरूप भाव **द्रव्यबन्ध के निमित्तकारण** है।

प्रश्न ३०४ — द्रव्यबन्ध का उपादानकारण क्या है?

उत्तर — बन्ध होने के पूर्वक्षण मे बन्ध होने के सन्मुख कार्मण-स्कन्ध को **द्रव्यबन्ध का उपादानकारण** कहते हैं।

प्रश्न ३०५ — भावबन्ध का निमित्तकारण क्या है?

उत्तर — उदय तथा उदीरणा अवस्था को प्राप्त पूर्वबद्धकर्म, **भावबन्ध का निमित्तकारण** है।

प्रश्न ३०६ — भावबन्ध का उपादानकारण क्या है?

उत्तर — भावबन्ध के विवक्षित समय से अनन्तर पूर्वक्षणवर्त्ती

---

२ पूर्व परिणामसहित द्रव्य कारणरूप है और उत्तरपरिणामसहित द्रव्य कार्यरूप है — ऐसा नियम है। (— कार्तिकेयानुप्रेक्षा, २२२)

योग-कषायरूप आत्मा की पर्याय-विशेष को **भावबन्ध का उपादान कारण** कहते हैं।

प्रश्न ३०७ — भावास्रव किसे कहते है?

उत्तर — द्रव्यबन्ध के निमित्तकारण अथवा भावबन्ध के उपादानकारण को **भावास्रव** कहते हैं।[१]

प्रश्न ३०८ — द्रव्यास्रव किसे कहते हैं?

उत्तर — द्रव्यबन्ध के उपादानकारण अथवा भावबन्ध के निमित्तकारण को **द्रव्यास्रव** कहते हैं।[२]

प्रश्न ३०९ — प्रकृतिबन्ध और अनुभागबन्ध मे क्या भेद है?

उत्तर — प्रत्येक प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादान शक्तियुक्त अनेक भेदरूप कार्मण-स्कन्ध का आत्मा से सम्बन्ध होना **प्रकृतिबन्ध** कहलाता है और उन ही स्कन्धो मे तारतम्यरूप (न्यूनाधिकरूप) फलदान शक्ति को **अनुभागबन्ध** कहते हैं।

प्रश्न ३१० — समस्त प्रकृतियो के बन्ध का कारण सामान्यतया योग है या उसमे कुछ विशेषता है?

उत्तर — जिसप्रकार भिन्न-भिन्न उपादान शक्तियुक्त नाना प्रकार के भोजनो को मनुष्य, हस्त द्वारा विशेष इच्छापूर्वक ग्रहण करता है और विशेष इच्छा के अभाव मे उदर-पूरण करने के लिए भोजन-सामान्य का ग्रहण करता है, उस ही प्रकार यह जीव विशेष कषाय के अभाव में योगमात्र से केवल साता वेदनीयरूप कर्म को ग्रहण करता है, परन्तु वह

१-२. जीव की शुभाशुभभावमय विकारी अवस्था को **भावास्रव** कहते हैं और उससमय कर्मयोग्य नवीन रजकणो का स्वय-स्वत आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप आना **द्रव्यास्रव** है। **(— लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १२५)**

योग, यदि किसी कषाय-विशेष से अनुरञ्जित हो तो अन्य-अन्य प्रकृतियो का भी बन्ध करता है।

प्रश्न ३११ — प्रकृतिबन्ध के कारणत्व की अपेक्षा से आस्रव के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रकृतिबन्ध के कारण **पाँच** हैं — मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।[1]

प्रश्न ३१२ — मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अदेव मे देवबुद्धि, अतत्त्व मे तत्त्वबुद्धि, अधर्म मे धर्मबुद्धि इत्यादि विपरीत अभिनिवेश (उल्टी मान्यता) रूप जीव के परिणाम को **मिथ्यात्व** कहते हैं।[2]

प्रश्न ३१३ — मिथ्यात्व के कितने भेद हैं?

उत्तर — मिथ्यात्व के **पाँच** भेद हैं — एकान्तमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, सशयमिथ्यात्व, अज्ञानमिथ्यात्व और विनयमिथ्यात्व।

प्रश्न ३१४ — एकान्तमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर — अनन्त धर्मयुक्त धर्मी के सम्बन्ध में 'यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं' इत्यादिरूप एकान्त अभिनिवेश (अभिप्राय) को **एकान्तमिथ्यात्व** कहते हैं। जैसे — बौद्ध मतावलम्बी पदार्थ को सर्वथा क्षणिक मानते हैं।

---

१. यहाँ मात्र प्रकृतिबन्ध का कारण कहा गया है, परन्तु इन पाँच प्रत्ययों को चारों प्रकार के बन्ध का कारण समझना चाहिए। **(प्रश्न क्रमाङ्क २९३ भी देखें)**

२. प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्वों के अन्यथा श्रद्धान को मिथ्यात्व या **मिथ्यात्व** कहते हैं। मिथ्यात्व दो प्रकार का है — अगृहीत और गृहीत। अनादिकाल से जीव की शरीरादि परपदार्थों में एकत्वबुद्धि **अगृहीत मिथ्यादर्शन** है तथा कुगुरु, कुदेव और कुधर्म के निमित्त से जो अनादिकालीन मिथ्यात्व का पोषण करना **गृहीत मिथ्यादर्शन** है। **(— छहढाला, दूसरी ढाल)**

प्रश्न ३१५ – विपरीतमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर – 'सग्रन्थ निर्ग्रन्थ हैं' अर्थात् वस्त्रधारी साधु होते हैं या 'केवली ग्रासाहारी (कवलाहारी) हैं' इत्यादि रुचि या श्रद्धा को **विपरीतमिथ्यात्व** कहते हैं।

प्रश्न ३१६ – संशयमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर – 'धर्म का लक्षण अहिंसा है या नहीं' इत्यादिरूप से सन्देहयुक्त श्रद्धा को **संशयमिथ्यात्व** कहते हैं।

प्रश्न ३१७ – अज्ञानमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर – जहाँ हिताहित के विवेक का कुछ भी सद्भाव नहीं होता है – ऐसी श्रद्धा को **अज्ञान-मिथ्यात्व** कहते हैं। जैसे – पशुवध मे धर्म मानना।

प्रश्न ३१८ – विनयमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर – समस्त देवों और समस्त मतों को समान माननेरूप श्रद्धा को **विनयमिथ्यात्व** कहते हैं।

प्रश्न ३१९ – अविरति किसे कहते हैं?

उत्तर – हिसा आदि पापों तथा इन्द्रिय-मन के विषयो मे प्रवृति को **अविरति** कहते हैं।

प्रश्न ३२० – अविरति के कितने भेद हैं?[१]

उत्तर – अविरति के तीन भेद हैं – १ अनन्तानुबन्धी कषायोदय-जनित अविरति, २ अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति और ३ प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति।

---

१. अन्य अपेक्षा से अविरति के बारह भेद हैं – षट्काय के जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करना और पाँच इन्द्रिय और मन के विषयों में प्रवृति करना।

(– लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, प्रश्न १५९)

प्रश्न ३२१ — प्रमाद किसे कहते है?[१]

उत्तर — सज्वलनकषाय और नोकषाय के तीव्र उदय से निरतिचार चारित्र पालने में अनुत्साह तथा स्वरूप की असावधानी को **प्रमाद** कहते हैं।

प्रश्न ३२२ — प्रमाद के कितने भेद है?

उत्तर — प्रमाद के **पन्द्रह** भेद हैं — चार विकथा (स्त्रीकथा, राष्ट्रकथा, भोजनकथा और राजकथा); चार कषाय (सज्वलन कषाय के तीव्रोदयजनित क्रोध, मान, माया और लोभ); पाँच इन्द्रियो के विषय, एक निद्रा, और एक स्नेह।

प्रश्न ३२३ — कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर — सज्वलनकषाय और नोकषाय के मन्द उदय मे प्रादुर्भूत आत्मा के परिणाम-विशेष को **कषाय** कहते हैं।[२]

प्रश्न ३२४ — योग किसे कहते हैं?

उत्तर — मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा (आहार- वर्गणा तथा कार्मण-वर्गणा) के अवलम्बन से कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने की शक्ति-विशेष को **योग** कहते हैं।

प्रश्न ३२५ — योग के कितने भेद है?

उत्तर — योग के पन्द्रह भेद हैं — चार मनोयोग (सत्य मनोयोग,

---

१. प्रमाद की इस परिभाषा में छठवें गुणस्थान के प्रमाद को ही प्रमाद कहा गया है, जबकि पहले गुणस्थान मे छठवे गुणस्थान तक प्रमाद की सत्ता होती है, लेकिन यहाँ पहले से लेकर पाँचवे गुणस्थान तक के प्रमाद को उन-उन गुणस्थानो के योग्य मिथ्यात्व और अविरति भावों मे अन्तर्भाव किया गया है।

२. कषाय की इस परिभाषा मे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद के बाद जो कषाय बचती है, उसे ही कषाय कहा गया है। जबकि मिथ्यात्व, अविरति और प्रमाद के साथ भी कषाय होती है, परन्तु यहाँ उनके साथ रहनेवाली कषाय को मिथ्यात्व, अविरति और प्रमाद के अन्तर्गत मे शामिल किया गया है।

असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग और अनुभय मनोयोग), चार वचनयोग (सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग और अनुभय वचनयोग), और सात काययोग (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण काययोग)।

प्रश्न ३२६ — मिथ्यात्व की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — मिथ्यात्व की प्रधानता से **सोलह** प्रकृतियो का बन्ध होता है — मिथ्यात्व, हुण्डक सस्थान, नपुसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असप्राप्तासृपाटिका सहनन, चार जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय), स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

प्रश्न ३२७ — अनन्तानुबन्धी कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियो का बन्ध होता है?

उत्तर — अनन्तानुबन्धी कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से **पच्चीस** प्रकृतियों का बन्ध होता है — अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत, चार सस्थान (न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, कुब्जक और वामन), चार सहनन (वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलित)।

प्रश्न ३२८ — अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से **दश** प्रकृतियों का बन्ध होता है — अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग और वज्रवृषभनाराच सहनन।

प्रश्न ३२९ — प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियो का बन्ध होता है?

उत्तर — प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति से चार प्रकृतियो का बन्ध होता है — प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ।

प्रश्न ३३० — प्रमाद की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियो का बन्ध होता है?

उत्तर — प्रमाद से **छह** प्रकृतियो का बन्ध होता है — अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयश कीर्ति, अरति और शोक।

प्रश्न ३३१ — कषाय की प्रधानता से कितनी और किन-किन प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर — कषाय से **अट्ठावन** प्रकृतियो का बन्ध होता है — देवायु, निद्रा, प्रचला, तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, देवगति, देव-गत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय, पुरुषवेद, सज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ, मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन.पर्ययज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय, यशस्कीर्ति और उच्च गोत्र।

प्रश्न ३३२ — योग की प्रधानता से किस प्रकृति का बन्ध होता है?

उत्तर — योग की प्रधानता से एक साता वेदनीय का बन्ध होता है।

प्रश्न ३३३ — कर्म-प्रकृतियों की संख्या १४८ है, परन्तु उनमे

केवल १२० प्रकृतियों के ही कारण बताये गये है; सो २८ प्रकृतियों का क्या होता है?

उत्तर – बन्ध योग्य १२० प्रकृतियों में बीस स्पर्शादि की जगह मुख्य चार का ग्रहण किया गया है – इस कारण १६ तो ये प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। पाँच शरीरों के पाँच बन्धन तथा पाँच संघात का ग्रहण भी नहीं किया जाता – इस कारण १० प्रकृतियाँ ये भी कम हो जाती हैं। सम्यक्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृति – इन २ प्रकृतियों का भी बन्ध नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वबद्ध मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खण्ड करता है, तब इन २ प्रकृतियों का प्रादुर्भाव होता है। इस कारण २ प्रकृतियाँ ये भी कम हो जाती हैं। इस प्रकार २८ प्रकृतियाँ कम करके बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ मानी गयी हैं।

प्रश्न ३३४ – द्रव्यास्रव के कितने भेद हैं?

उत्तर – द्रव्यास्रव के दो भेद हैं – साम्परायिक और ईर्यापथ।

प्रश्न ३३५ – साम्परायिक आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर – जीव के कषाय-भावों के निमित्त से जो कर्म-प्रकृतियाँ आत्मा में कुछ काल तक के लिए स्थितिबन्ध को प्राप्त होते हैं, उनके आस्रव को **साम्परायिक आस्रव** कहते हैं।

प्रश्न ३३६ – ईर्यापथ आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर – जीव मे मात्र योग के निमित्त से जिन कर्म-परमाणुओं का बन्ध, उदय और निर्जरा एक ही समय में होता है, उनके आस्रव को **ईर्यापथ आस्रव** कहते हैं।

प्रश्न ३३७ – इन दोनों आस्रवों के स्वामी कौन-कौन हैं?

उत्तर – साम्परायिक आस्रव का स्वामी कषायसहित जीव और ईर्यापथ का स्वामी कषायरहित जीव होता है।

प्रश्न ३३८ — पुण्यास्रव और पापास्रव का कारण क्या है?

उत्तर — शुभयोग से पुण्यास्रव और अशुभयोग से पापास्रव होता है।

प्रश्न ३३९ — शुभयोग और अशुभयोग किसे कहते है?

उत्तर — शुभपरिणाम से उत्पन्न योग को **शुभयोग** और अशुभपरिणाम से उत्पन्न योग को **अशुभयोग** कहते हैं।

प्रश्न ३४० — जिस समय जीव को शुभयोग होता है, उस समय पापप्रकृतियों का आस्रव होता है या नहीं?

उत्तर — जिस समय जीव को शुभयोग होता है, उस समय भी पापप्रकृतियों का आस्रव होता रहता है।

प्रश्न ३४१ — यदि शुभयोग के समय भी पापास्रव होता है तो शुभयोग, पापास्रव का भी कारण ठहरा?

उत्तर — शुभयोग, पापास्रव का कारण नहीं है, क्योंकि जिस समय जीव में शुभयोग होता है, उस समय पुण्यप्रकृतियो मे स्थिति-अनुभाग अधिक होता है और पाप प्रकृतियो मे कम, इसी प्रकार जब अशुभयोग होता है, तब पापप्रकृतियों में स्थिति-अनुभाग अधिक पडता है और पुण्यप्रकृतियों में कम। तत्त्वार्थसूत्र के छठवें अध्याय में ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के आस्रव के कारण जो प्रदोष, निह्नव आदि कहे गये हैं, उसका अभिप्राय है कि उन भावों से उन-उन प्रकृतियों मे स्थिति-अनुभाग अधिक-अधिक पडते हैं। अन्यथा जो ज्ञानावरणादिक पापप्रकृतियो का आस्रव दशवें गुणस्थान तक सिद्धान्तशास्त्र मे कहा है, उससे विरोध आता है अथवा वहाँ शुभयोग के अभाव का प्रसङ्ग आता है, क्योंकि शुभयोग दशवें गुणस्थान से पहले-पहले ही होता है।

।। इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः।।

तृतीय अध्याय

जीव की खोज

(दोहा)

मार्गणा हो जीव की, जो खोजें निज जीव।
लोकत्रय त्रयकाल में, अनुभव करो सदीव।।

३.१ जीव के असाधारण पाँच भाव

प्रश्न ३४२ – जीव के असाधारण भाव कितने है?

उत्तर – जीव के असाधारण भाव **पाँच** हैं – औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिकभाव।

प्रश्न ३४३ – औपशमिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – जो भाव किसी कर्म के उपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **औपशमिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४४ – क्षायिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – जो भाव किसी कर्म के क्षय के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **क्षायिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४५ – क्षायोपशमिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – जो भाव कर्मों के क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **क्षायोपशमिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४६ – औदयिकभाव किसे कहते है?

उत्तर – जो भाव कर्मों के उदय के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे **औदयिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४७ – पारिणामिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – जो भाव कर्मों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदय की अपेक्षा नहीं रखता है और जो जीव का स्वभावमात्र होता है, उसे **परिणामिकभाव** कहते हैं।

प्रश्न ३४८ – औपशमिकभाव के कितने भेद है?

उत्तर – औपशमिकभाव के **दो** भेद हैं – सम्यक्त्व और चारित्र।

प्रश्न ३४९ – क्षायिकभाव के कितने भेद है?

उत्तर – क्षायिकभाव के **नौ** भेद हैं – क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदर्शन, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक–उपभोग और क्षायिकवीर्य।

प्रश्न ३५० – क्षायोपशमिकभाव के कितने भेद है?

उत्तर – क्षायोपशमिकभाव के **अठारह** भेद हैं – क्षायोपशमिक–सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र (सकलसयम), देशसयम (सयमासयम), चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, क्षायोपशमिकदान, क्षायोपशमिकलाभ, क्षायोपशमिकभोग, क्षायोपशमिक–उपभोग और क्षायोपशमिकवीर्य।

प्रश्न ३५१ – औदयिकभाव के कितने भेद है?

उत्तर – औदयिकभाव के **इक्कीस** भेद हैं – चार गति, चार कषाय, तीन लिङ्ग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असयम, असिद्धत्व और छह लेश्या – कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

प्रश्न ३५२ – पारिणामिकभाव के कितने भेद है?

उत्तर – पारिणामिकभाव के **तीन** भेद हैं – जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व।

३.२ लेश्या और उसके भेद

प्रश्न ३५३ – लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर – कषाय से अनुरञ्जित योगों की प्रवृत्ति को **भावलेश्या** कहते हैं और शरीर के कृष्ण, नील, कपोत तथा पीत, पद्म, शुक्ल वर्णों को **द्रव्यलेश्या** कहते हैं।

३.३ उपयोग और उसके भेद

प्रश्न ३५४ – उपयोग किसे कहते है?

उत्तर – जीव के लक्षणरूप चैतन्यानुविधायी परिणाम को **उपयोग** कहते हैं।

प्रश्न ३५५ – उपयोग के कितने भेद है?

उत्तर – उपयोग के दो भेद हैं – दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग।

प्रश्न ३५६ – दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर – दर्शनोपयोग के **चार** भेद हैं – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्रश्न ३५७ – ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर – ज्ञानोपयोग के **आठ** भेद हैं – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान।

३.४ संज्ञा और उसके भेद

प्रश्न ३५८ – संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर – अभिलाषा या वाञ्छा को **संज्ञा** कहते हैं।

प्रश्न ३५९ – संज्ञा के कितने भेद हैं?

उत्तर – सज्ञा के **चार** भेद हैं – आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

३.५ मार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ३६० — मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन-जिन धर्म-विशेषो से जीवो का अन्वेषण (खोज) किया जाए, उन-उन धर्म-विशेषो को **मार्गणा** कहते हैं।

प्रश्न ३६१ — मार्गणा के कितने भेद है?

उत्तर — मार्गणा के **चौदह** भेद हैं — गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, सज्ञित्व और आहारकमार्गणा।

३.६ गतिमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ३६२ — गति किसे कहते हैं?

उत्तर — गति नामकर्म के उदय से जीव की पर्याय-विशेष को **गति** कहते हैं।

प्रश्न ३६३ — गति के कितने भेद है?

उत्तर — गति के **चार** भेद हैं — नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति।

३.७ इन्द्रियमार्गणा और उसके भेद—प्रभेद

प्रश्न ३६४ — इन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — आत्मा के लिङ्ग (चिह्न) को **इन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३६५ — इन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उत्तर — इन्द्रिय के **दो** भेद हैं — द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

प्रश्न ३६६ — द्रव्येन्द्रिय किसे कहते है?

उत्तर — **निर्वृत्ति और उपकरण** को **द्रव्येन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३६७ — निर्वृत्ति किसे कहते है?

उत्तर — प्रदेशों की विशेष रचना को **निर्वृत्ति** कहते हैं।

प्रश्न ३६८ — निर्वृत्ति के कितने भेद है?

उत्तर — निर्वृत्ति के **दो** भेद हैं — बाह्य निवृत्ति और आभ्यन्तर निवृत्ति।

प्रश्न ३६९ — बाह्य निर्वृत्ति किसे कहते है?

उत्तर — इन्द्रियो के आकाररूप पुद्गल की विशेष रचना को **बाह्य निर्वृत्ति** कहते हैं।

प्रश्न ३७० — आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसे कहते है?

उत्तर — आत्मा के प्रदेशो की इन्द्रियाकार विशेष रचना को **आभ्यन्तर निर्वृत्ति** कहते हैं।

प्रश्न ३७१ — उपकरण किसे कहते है?

उत्तर — जो निर्वृत्ति का उपकार (रक्षा) करता है, उसे **उपकरण** कहते हैं।

प्रश्न ३७२ — उपकरण के कितने भेद हैं?

उत्तर — उपकरण के **दो** भेद हैं — आभ्यन्तर उपकरण और बाह्य उपकरण।

प्रश्न ३७३ — आभ्यन्तर उपकरण किसे कहते हैं?

उत्तर — नेत्र-इन्द्रिय मे कृष्ण-शुक्ल मण्डल की तरह, सभी इन्द्रियो में जो निर्वृत्ति का उपकार करता है, उसे **आभ्यन्तर उपकरण** कहते हैं।

प्रश्न ३७४ — बाह्य उपकरण किसे कहते हैं?

उत्तर — नेत्र-इन्द्रिय मे पलक वगैरह की तरह, जो निर्वृत्ति का उपकार करता है, उसे **बाह्य उपकरण** कहते हैं।

प्रश्न ३७५ — भावेन्द्रिय किसे कहते है?

उत्तर — लब्धि और उपयोग को **भावेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३७६ — लब्धि किसे कहते है?

उत्तर — ज्ञानावरणकर्म के विशेष क्षयोपशम को **लब्धि** कहते हैं।

प्रश्न ३७७ — उपयोग किसे कहते हैं?

उत्तर — ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम होने पर द्रव्येन्द्रिय के निमित्त से उद्यमशील आत्मा के परिणाम को **उपयोग** कहते हैं।

प्रश्न ३७८ — द्रव्येन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उत्तर — द्रव्येन्द्रिय के **पाँच** भेद हैं — स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय।

प्रश्न ३७९ — स्पर्शनेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा आठ प्रकार के स्पर्श का ज्ञान होता है, उसे **स्पर्शनेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८० — रसनेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा पॉच प्रकार के रस (स्वाद) का ज्ञान होता है, उसे **रसनेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८१ — घ्राणेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा दो प्रकार के गन्ध का ज्ञान होता है, उसे **घ्राणेन्द्रिय** कहते है।

प्रश्न ३८२ — चक्षुरिन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस इन्द्रिय के द्वारा पॉच प्रकार के वर्ण (रग) का ज्ञान होता है, उसे **चक्षुरिन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८३ — कर्णेन्द्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस इन्द्रिय के द्वारा सात प्रकार के स्वरो का तथा भाषा का ज्ञान होता है, उसे **कर्णेन्द्रिय** कहते हैं।

प्रश्न ३८४ – किन-किन जीवो की कौन-कौनसी इन्द्रियाँ होती है?

उत्तर – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति – इन पाँच स्थावरकाय जीवो की एक स्पर्शन-इन्द्रिय ही होती है। कृमि आदि त्रसकाय जीवो की स्पर्शन और रसना – ये दो इन्द्रियॉ होती हैं। पिपीलिका (चीटी) आदि त्रसकाय जीवों की स्पर्शन, रसना और घ्राण – ये तीन इन्द्रियॉ होती हैं। भ्रमर, मक्षिका आदि त्रसकाय-जीवो की श्रोत्र (कर्ण) के बिना शेष चार इन्द्रियॉ होती हैं। घोड़े आदि पशु, मनुष्य, देव और नारकी त्रसकाय जीवो की पॉचो इन्द्रियॉ होती हैं।

३.८ कायमार्गणा और उसके भेद-प्रभेद

प्रश्न ३८५ – काय किसे कहते है?

उत्तर – त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से पुद्गलो के प्रदेश-प्रचय को **काय** कहते हैं।

प्रश्न ३८६ – त्रस किसे कहते है?

उत्तर – त्रस नामकर्म के उदय से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रियो मे जन्म लेने वाले जीवो को **त्रस** कहते हैं।

प्रश्न ३८७ – स्थावर किसे कहते है?

उत्तर – स्थावर नामकर्म के उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जन्म लेने वाले जीवो को **स्थावर** कहते हैं।

प्रश्न ३८८ – बादर किसे कहते हैं?

उत्तर – जो स्वय अन्य स्थूल पदार्थों से रुकता है और अन्य स्थूल पदार्थों को रोकता है, उसे **बादर** कहते हैं।

प्रश्न ३८९ — सूक्ष्म किसे कहते हैं?

उत्तर — जो स्वय अन्य पदार्थों से नहीं रुकता है और अन्य पदार्थों को नहीं रोकता है, उसे **सूक्ष्म** कहते हैं।

प्रश्न ३९० — वनस्पति के कितने भेद है?

उत्तर — वनस्पति के **दो** भेद हैं — प्रत्येक वनस्पति और साधारण वनस्पति।

प्रश्न ३९१ — प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस वनस्पति का स्वामी एक ही जीव होता है, उसे **प्रत्येक वनस्पति** कहते हैं।

प्रश्न ३९२ — साधारण वनस्पति किसे कहते हैं?

उत्तर — जिन जीवों के आहार, आयु, श्वासोच्छ्वास और काय — ये साधारण (समान अथवा एक) होते है, उन्हें **साधारण वनस्पति** कहते हैं। जैसे — कन्दमूल आदि।

प्रश्न ३९३ — प्रत्येक वनस्पति के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रत्येक वनस्पति के **दो** भेद हैं — सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक।

प्रश्न ३९४ — सप्रतिष्ठित प्रत्येक किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय से अनेक साधारण वनस्पति शरीर होते हैं, उसे **सप्रतिष्ठित प्रत्येक** कहते हैं।

प्रश्न ३९५ — अप्रतिष्ठित प्रत्येक किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय से कोई भी साधारण वनस्पति नहीं होती, उसे **अप्रतिष्ठित प्रत्येक** कहते हैं।

प्रश्न ३९६ — साधारण वनस्पति, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति

के आश्रय में ही होती है या और कहीं भी होती है?

उत्तर — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, केवली भगवान, आहारक शरीर, देव और नारकी — इन आठ के अतिरिक्त सब ससारी जीवों के शरीर, साधारण वनस्पति अर्थात् निगोद के आश्रयभूत होते हैं।

प्रश्न ३९७ — साधारण वनस्पति (निगोद) के कितने भेद है?

उत्तर — साधारण वनस्पति (निगोद) के **दो** भेद हैं — नित्य निगोद और इतर निगोद।

प्रश्न ३९८ — नित्य निगोद किसे कहते है?

उत्तर — जिस जीव ने कभी भी निगोद के अलावा दूसरी पर्याय नहीं पायी है अर्थात् जो अनादि से अब तक निगोद पर्याय मे ही रहा है, उसे **नित्य निगोद** कहते हैं।

प्रश्न ३९९ — इतर निगोद किसे कहते हैं?

उत्तर — जो जीव निगोद से निकलकर दूसरी पर्याय पाकर फिर निगोद मे उत्पन्न होते हैं, उसे **इतर निगोद** कहते हैं।

प्रश्न ४०० — कौन-कौनसे जीव बादर और सूक्ष्म है?

उत्तर — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद और इतरनिगोद — ये छह बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं। शेष सभी जीव बादर ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं होते।

३.९ योगमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०१ — योग किसे कहते हैं?

उत्तर — पुद्गल-विपाकी शरीर नामकर्म और अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा तथा कायवर्गणा के अवलम्बन से कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने हेतु जीव की विशेष शक्ति को **भावयोग**

कहते हैं तथा इस भावयोग के निमित्त से आत्मप्रदेशो के परिस्पन्दन (चञ्चल होने) को **द्रव्ययोग** कहते हैं।

प्रश्न ४०२ – योग के कितने भेद हैं?

उत्तर – योग के **पन्द्रह** भेद हैं – चार मनोयोग, चार वचनयोग, और सात काययोग।

३.१० वेदमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०३ – वेद किसे कहते हैं?

उत्तर – नोकषाय के उदय से उत्पन्न हुई जीव की मैथुन करने की अभिलाषा को **भाववेद** कहते हैं और जीव के नामकर्म के उदय से आविर्भूत शरीर के विशेष चिह्न को **द्रव्यवेद** कहते हैं।

प्रश्न ४०४ – वेद के कितने भेद हैं?

उत्तर – वेद के **तीन** भेद हैं – स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद।

३.११ कषायमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०५ – कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर – जो आत्मा के सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र, और यथाख्यातचारित्ररूप परिणामो को घातती हैं, उन्हे **कषाय** कहते हैं।[1]

प्रश्न ४०६ – कषाय के कितने भेद है?

उत्तर – कषाय के **सोलह** भेद हैं – चार अनन्तानुबन्धी, चार अप्रत्याख्यानावरणीय, चार प्रत्याख्यानावरणीय और चार सज्वलन।

---

१. सामान्यत जो आत्मा को कषती है अर्थात् दु ख देती है, हिसा करती है, उसे **कषाय** कहते हैं। यहाँ विशेषरूप से कषाय के अनन्तानुबन्धी आदि चार भेदों की अपेक्षा यह लक्षण बताया गया है। **(– तत्त्वार्थवार्तिक २/६)**

३.१२ ज्ञानमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०७ – ज्ञानमार्गणा के कितने भेद है?[१]

उत्तर – ज्ञानमार्गणा के **आठ** भेद हैं – मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय, और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान।

३.१३ संयममार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४०८ – सयम किसे कहते हैं?

उत्तर – अहिसा आदि पॉच व्रतो के धारण करने, ईर्या आदि पॉच समितियों के पालन करने, क्रोध आदि कषायों के निग्रह करने, मनोयोग आदि तीन योगो के रोकने, स्पर्शन आदि पॉचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने को **सयम** कहते हैं।

प्रश्न ४०९ – सयममार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर – सयममार्गणा के **सात** भेद हैं – सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, सयमासयम, और असयम।

३.१४ दर्शनमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१० – दर्शनमार्गणा के कितने भेद हैं?[२]

उत्तर – दर्शनमार्गणा के **चार** भेद हैं – चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन।

---

१. **प्रश्न – ज्ञान किसे कहते है?**
उत्तर – जिससे स्व-पर पदार्थों का विशेष प्रतिभास होता है, उसे **ज्ञान** कहते हैं।
(प्रश्न क्रमाङ्क ८२ भी देखें।)

२. **प्रश्न – दर्शन किसे कहते हैं?**
उत्तर – जिससे स्व-पर पदार्थों का सामान्य प्रतिभास होता है, उसे **दर्शन** कहते हैं।
(प्रश्न क्रमाङ्क ८३ भी देखें।)

३.१५ लेश्यामार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४११ – लेश्यामार्गणा के कितने भेद है?[१]

उत्तर – लेश्यामार्गणा के छह भेद हैं – कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, और शुक्ल।

३.१६ भव्यमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१२ – भव्यमार्गणा के कितने भेद है?[२]

उत्तर – भव्यमार्गणा के दो भेद हैं – भव्य और अभव्य।

३.१७ सम्यक्त्वमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१३ – सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर – तत्त्वार्थश्रद्धान को **सम्यक्त्व** कहते हैं।

प्रश्न ४१४ – सम्यक्त्वमार्गणा के कितने भेद है?

उत्तर – सम्यक्त्वमार्गणा के छह भेद हैं – उपशमसम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व।

३.१७ संज्ञीमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१५ – सज्ञी किसे कहते है?

उत्तर – जिस जीव मे सज्ञा होती है, उसे **सज्ञी** कहते हैं।

प्रश्न ४१६ – सज्ञा किसे कहते है?

उत्तर – द्रव्यमन के निमित्त से शिक्षा आदि ग्रहण करने की बुद्धि को **संज्ञा** कहते हैं।

---

१. प्रश्न क्रमाङ्क ३५३ देखें।

२. प्रश्न क्रमाङ्क ११९ देखें।

प्रश्न ४३९ – सम्मूर्च्छन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो के १८ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे है?

उत्तर – जलचर, थलचर और नभचर – इन तीनो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो के सैनी और असैनी की अपेक्षा से छह भेद होते हैं और इन छह भेदो के पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक की अपेक्षा से १८ जीवसमास या भेद सम्मूर्च्छन पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो के होते हैं।

प्रश्न ४४० – गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो के १६ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे है?

उत्तर – गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे कर्मभूमि के बारह और भोगभूमि के चार – इस प्रकार कुल १६ जीवसमास या भेद हैं।

प्रश्न ४४१ – गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे कर्मभूमि के १२ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर – जलचर, थलचर और नभचर – इन तीनो के सैनी और असैनी के भेद से छह भेद होते हैं और इनके पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा १२ जीवसमास या भेद गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो के होते हैं।

प्रश्न ४४२ – गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे भोगभूमि के ४ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे है?

उत्तर – थलचर और नभचर – इनके पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा ४ जीवसमास या भेद गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे भोगभूमि के होते हैं। भोगभूमि मे असैनी तिर्यञ्च नहीं होते।

प्रश्न ४४३ – मनुष्यों के ९ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर – आर्यखण्ड, म्लेच्छखण्ड, भोगभूमि, और कुभोगभूमि – इन चारो गर्भज मनुष्यो के पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा आठ जीवसमास या भेद होते हैं, इनमें आर्यखण्ड के सम्मूर्च्छन मनुष्यों

का लब्ध्यपर्याप्तक भेद मिलाने से कुल ९ जीवसमास या भेद मनुष्यो के होते हैं।

प्रश्न ४४४ – नारकियों के २ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर – नारकियो के पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक – ये २ जीवसमास या भेद होते हैं।

प्रश्न ४४५ – देवो के २ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे है?

उत्तर – देवो के पर्याप्तक और निर्वृत्त्यपर्याप्तक – ये २ जीवसमास या भेद होते हैं।

प्रश्न ४४६ – देवो के विशेष भेद कितने है?

उत्तर – देवो के विशेष **चार** भेद हैं – भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।

प्रश्न ४४७ – भवनवासी देवो के कितने भेद है?

उत्तर – भवनवासी देवो के **दस** भेद हैं – असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।

प्रश्न ४४८ – व्यन्तर देवों के कितने भेद है?

उत्तर – व्यन्तर देवो के **आठ** भेद हैं – किन्नर, किपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच।

प्रश्न ४४९ – ज्योतिषी देवो के कितने भेद है?

उत्तर – ज्योतिषी देवो के **पाँच** भेद हैं – सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, और तारे।

प्रश्न ४५० – वैमानिक देवों के कितने भेद है?

उत्तर – वैमानिक देवो के **दो** भेद हैं – कल्पोपपन्न देव और कल्पातीत देव।

प्रश्न ४५१ — कल्पोपपन्न देव किसे कहते है?

उत्तर — जहाँ इन्द्र आदि की कल्पना होती है, उसे **कल्प** कहते हैं और जो कल्प मे उत्पन्न होते हैं, उन्हे **कल्पोपपन्न देव** कहते हैं।

प्रश्न ४५२ — कल्पातीत देव किन्हे कहते है?

उत्तर — जहाँ इन्द्र आदि की कल्पना नहीं होती अथवा जो कल्प मे परे हैं, उन्हे **कल्पातीत देव** कहते हैं।

प्रश्न ४५३ — कल्पोपपन्न देवो के कितने भेद है?

उत्तर — कल्पोपपन्न देवो के स्वर्गों की अपेक्षा १६ (आठ जोडियाँ) भेद हैं — सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत।[1]

प्रश्न ४५४ — कल्पातीत देवो के कितने भेद है?

उत्तर — कल्पातीत देवो के २३ भेद हैं — ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश और ५ अनुत्तर (विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सवार्थसिद्धि)।[2]

प्रश्न ४५५ — नारकियों के विशेष भेद कितने हैं?

उत्तर — अधोलोक में पृथिवियों की अपेक्षा नारकियों के ७ भेद हैं।

प्रश्न ४५६ — अधोलोक की सात पृथिवियों के नाम क्या-क्या हैं?

उत्तर — अधोलोक की सात पृथिवियो के नाम निम्न हैं —

---

१. इन्द्रो की अपेक्षा वैमानिक देवो के १२ ही भेद हैं, क्योकि १६ स्वर्गों मे से ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र और सतार-सहस्रार स्वर्ग के जोड़ों में एक-एक इन्द्र ही होते हैं।

२. इनमे इन्द्र आदि की कल्पना नहीं होने से सभी देव अहमिन्द्र होते हैं।

रत्नप्रभा (घम्मा), शर्कराप्रभा (वशा), बालुकाप्रभा (मेघा), पकप्रभा (अञ्जना), धूमप्रभा (अरिष्टा), तम प्रभा (मघवी) और महातम प्रभा (माघवी)।[१]

प्रश्न ४५७ – सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवो के रहने का स्थान कहाँ है?

---

१. मेरुतल के नीचे का क्षेत्र **अधोलोक** है। यह वेत्रासन के आकारवाला है। यह सात राजू ऊँचा और सात राजू मोटा है तथा नीचे सात राजू व ऊपर एक राजू प्रमाण चौडा है। अधोलोक मे नीचे-नीचे सात पृथिवियाँ हैं, जो लगभग एक राजू अन्तराल से स्थित हैं। प्रत्येक पृथिवी मे क्रमश १३, ११, ९, ७, ५, ३, १ पटल हैं। ये पटल १००० योजन अन्तराल से अवस्थित हैं। कुल पटल ४९ हैं। प्रत्येक भूमि क्रमश घनाम्बुवातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय और आकाश के आधार पर उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित हैं।

प्रथम रत्नप्रभा नामक पृथिवी के तीन भाग हैं – खरभाग, पङ्कभाग और अब्बहुलभाग। प्रथम खरभाग, चित्रा, लोहिताङ्क आदि १६ प्रस्तरो मे विभक्त है। प्रत्येक प्रस्तर १००० योजन मोटा है। चित्रा नामक प्रथम प्रस्तर अनेक रत्नो और धातुओ की खान है, अत इस सम्पूर्ण पृथिवी का नाम रत्नप्रभा है। खर और पङ्क भाग मे भवनवासी देवों तथा व्यन्तर देवों के भवन हैं। व्यन्तर देवो के निवास सम्पूर्ण मध्यलोक मे भी पुर, भवन, आवास के रूप में फैले हुए हैं। सातो पृथिवियो के नीचे अन्त मे एक राजू प्रमाण क्षेत्र में कलकलपृथ्वी है, जहाँ नित्य निगोदिया जीव रहते हैं।

इन सात भूमियो के पटलो मे क्रमश तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच नरक या बिल हैं अर्थात् कुल नरको की सख्या ८४ लाख है। प्रत्येक पटल का मध्यवर्ती बिल इन्द्रक कहलाता है। इसकी चारों दिशाओ व विदिशाओ मे एकश्रेणी मे अवस्थित बिल श्रेणीबद्ध कहलाते हैं और इनके बीच मे रत्नराशिवत् बिखरे हुए बिल प्रकीर्णक कहलाते हैं।

इन बिलो मे नारकी जीव रहते हैं। इनमे रहनेवाले नारकी क्रमश निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रियावाले हैं। परस्पर एक-दूसरे को दु ख उत्पन्न करते हैं तथा तीसरी भूमि के अन्त तक सक्लेश परिणामवाले असुरकुमार जाति के देवों के द्वारा भी उनमें दु ख उत्पन्न किए जाते हैं। नारकियों की उत्कृष्ट आयु क्रमश एक, तीन, सात, दश, सतरह, बाईस और तैतीस सागर है, जबकि उनकी जघन्य आयु क्रमश दस हजार वर्ष तथा एक, तीन, सात, दश, सतरह और बाईस सागर हैं।

(– तत्त्वार्थसूत्र, तृतीय अध्याय, सूत्र १–६)

प्रश्न ४१७ — सञ्ज्ञीमार्गणा के कितने भेद है?

उत्तर — सञ्ज्ञीमार्गणा के दो भेद हैं — सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी।

३.१९ आहारकमार्गणा और उसके भेद

प्रश्न ४१८ — आहारक किसे कहते है?

उत्तर — औदारिक आदि शरीरो और छह पर्याप्तियो के योग्य पुद्गलो के ग्रहण करने को **आहारक** कहते हैं।

प्रश्न ४१९ — आहारकमार्गणा के कितने भेद है?

उत्तर — आहारकमार्गणा के दो भेद हैं — आहारक और अनाहारक।

प्रश्न ४२० — कौन-कौनसे जीव अनाहारक होते है?

उत्तर — विग्रहगति, केवली समुद्घात, अयोग केवली और सिद्ध अवस्था मे जीव **अनाहारक** होता है।

३.२० विग्रहगति और उसके भेद

प्रश्न ४२१ — विग्रहगति किसे कहते है?

उत्तर — एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर के प्रति जीव के गमन करने को **विग्रहगति** कहते हैं।

प्रश्न ४२२ — विग्रहगति मे कौनसा योग होता है?

उत्तर — विग्रहगति मे कार्मण काययोग होता है।

प्रश्न ४२३ — विग्रहगति के कितने भेद है?

उत्तर — विग्रहगति के चार भेद हैं — १ ऋजुगति, २ पाणिमुक्तागति, ३ लाङ्गलिकागति और ४ गोमूत्रिकागति।

प्रश्न ४२४ — इन विग्रहगतियों में जीव को कितना-कितना काल लगता है?

उत्तर — १ ऋजुगति मे एक समय, २ पाणिमुक्तागति अर्थात्

एक मोडे वाली गति मे दो समय, ३ लाङ्गलिकागति अर्थात् दो मोडे वाली गति में तीन समय, और ४ गोमूत्रिकागति अर्थात् तीन मोडे वाली गति में चार समय लगते हैं।

प्रश्न ४२५ – चार प्रकार की विग्रहगतियो में अनाहारक अवस्था कितने समय तक रहती है?

उत्तर – ससारी जीव ऋजुगति में अनाहारक नहीं होता, पाणिमुक्तागति मे एक समय, लाङ्गलिकागति में दो समय और गोमूत्रिकागति मे तीन समय तक अनाहारक रहता है।

प्रश्न ४२६ – मोक्ष जानेवाले जीव की कौनसी गति होती है?

उत्तर – मोक्ष जानेवाले जीव की ऋजुगति होती है, परन्तु वह जीव अनाहारक ही होता है।

३.२१ जन्म और उसके भेद

प्रश्न ४२७ – जन्म कितने प्रकार का होता है?[1]

उत्तर – जन्म तीन प्रकार का होता है – उपपादजन्म, गर्भजन्म और सम्मूर्च्छनजन्म।

प्रश्न ४२८ – उपपादजन्म किसे कहते है?

उत्तर – जो जीव देवों की उपपाद शय्या तथा नारकियों के योनिस्थान मे पहुँचते ही अन्तर्मुहूर्त मे युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं, उनके जन्म को **उपपादजन्म** कहते हैं।

प्रश्न ४२९ – गर्भजन्म किसे कहते हैं?

---

१. प्रश्न – जन्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जब कोई जीव एक गति छोड़कर दूसरी गति में जाता है तो दूसरी गति में जाकर यथायोग्य [illegible] धारण करने को जन्म कहते हैं। (– तत्त्वार्थ[illegible] [illegible])

उत्तर – माता-पिता के रज-वीर्य के मेल से जिनका शरीर बनता है, उनके जन्म को **गर्भजन्म** कहते हैं।

प्रश्न ४३० – सम्मूर्च्छनजन्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जो जीव माता-पिता की अपेक्षा के बिना इधर-उधर के परमाणुओ को शरीररूप परिणमाता है, उनके जन्म को **सम्मूर्च्छनजन्म** कहते हैं।

प्रश्न ४३१ – किन-किन जीवों का कौन-कौनसा जन्म होता है?

उत्तर – देव-नारकियो का **उपपादजन्म**; जरायुज, अण्डज, पोत जीवो का **गर्भजन्म** और शेष जीवो का **सम्मूर्च्छनजन्म** ही होता है। जो योनि से निकलते ही भागने-दौडने लग जाते हैं और जिनके ऊपर जेर या झिल्ली आदि नहीं होती है, उन्हे **पोत** कहते हैं।

३.२२ लिङ्ग और उसके भेद

प्रश्न ४३२ – कौन-कौनसे जीवों का कौन-कौनसा लिङ्ग होता है?[1]

उत्तर – नारकी और सम्मूर्च्छन जीवो के नपुसकलिङ्ग होता है, देवो के पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग होते हैं तथा शेष जीवो के तीनो लिङ्ग होते हैं।

३.२३ जीवसमास और भेद-प्रभेद

प्रश्न ४३३ – जीवसमास किसे कहते है?[2]

---

१. **प्रश्न – लिङ्ग किसे कहते हैं?**

उत्तर – सामान्यतया बाह्य चिह्न को लिङ्ग कहते हैं।

(प्रश्न क्रमाङ्क ४०३–४०४ देखें)

२. अनन्तानन्त ससारी जीव और उनके भेद-प्रभेदों का जिस विधि से सग्रह किया जाता है अथवा जहाँ जीव अच्छी तरह से रहते हैं, उन्हें **जीवसमास** कहते हैं।

(– धवला १/१, १८/१६०)

उत्तर — जीवो के रहने के स्थानों को **जीवसमास** कहते हैं।

प्रश्न ४३४ — जीवसमास के कितने भेद हैं?

उत्तर — एक अपेक्षा से जीवसमास के ९८ भेद हैं — तिर्यञ्चो के ८५, मनुष्यो के ९, नारकियों के २ और देवो के २।

प्रश्न ४३५ — तिर्यञ्चों के ८५ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — सम्मूर्च्छनजन्मवालो के ६९ और गर्भजन्मवालो के १६ — इस प्रकार तिर्यञ्चो के ८५ जीवसमास या भेद हैं।

प्रश्न ४३६ — सम्मूर्च्छनजन्मवाले तिर्यञ्चो के ६९ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे है?

उत्तर — एकेन्द्रिय के ४२, विकलत्रय के ९ और सम्मूर्च्छन पञ्चेन्द्रिय के १८ — इस प्रकार सम्मूर्च्छन जन्मवाले तिर्यञ्चो के ६९ जीवसमास या भेद हैं।

प्रश्न ४३७ — एकेन्द्रिय के ४२ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे हैं?

उत्तर — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद, और इतरनिगोद — इन छह भेदों के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा से १२ तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक को मिलाने से १४ भेद हैं — इन चौदहो के पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक — इन तीनो की अपेक्षा से ४२ जीवसमास या भेद एकेन्द्रिय के होते हैं।

प्रश्न ४३८ — विकलत्रय के ९ जीवसमास या भेद कौन-कौनसे है?

उत्तर — द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के पर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक की अपेक्षा से ९ जीवसमास या भेद होते हैं।

मनुष्यक्षेत्र से बाहर के समस्त द्वीपो में जघन्य भोगभूमि के समान रचना है, किन्तु अन्तिम स्वयभूरमण द्वीप के उत्तरार्द्ध तथा समस्त स्वयभूरमण समुद्र मे और चारों कोनो की पृथिवियो मे कर्मभूमि के समान रचना है। लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्र मे ९६ अन्तर्द्वीप हैं, इसी प्रकार विदेहक्षेत्रो की १६० कर्मभूमियो के मध्य ५६-५६ अन्तर्द्वीप हैं, इन सर्व अन्तर्द्वीपो मे कुभोगभूमि की रचना है, वहाँ कुमनुष्य ही रहते हैं, उनमे मनुष्यो की नाना प्रकार की कुत्सित आकृतियाँ हैं।[1]

।। इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः।।[2]

---

१ जिनागम मे **मध्यलोक** के असख्यात द्वीप-समुद्रों मे से जम्बूद्वीप से प्रारम्भ होकर सोलह द्वीप-समुद्रो के नाम निम्नप्रकार हैं – १ जम्बूद्वीप–लवणसमुद्र, २ धातकीखण्डद्वीप–कालोदधिसमुद्र, ३ पुष्करवरद्वीप–पुष्करवरसमुद्र, ४ वारुणीवरद्वीप–वारुणीवरसमुद्र, ५ क्षीरवरद्वीप–क्षीरवरसमुद्र, ६ घृतवरद्वीप–घृतवरसमुद्र, ७ इक्षुवरद्वीप–इक्षुवरसमुद्र, ८ नन्दीश्वरद्वीप–नन्दीश्वरसमुद्र, ९ अरुणीवरद्वीप–अरुणीवरसमुद्र, १० अरुणाभासद्वीप–अरुणाभाससमुद्र, ११ कुण्डलवरद्वीप–कुण्डलवरसमुद्र, १२ शखवरद्वीप–शखवरसमुद्र, १३ रुचकवरद्वीप–रुचकवरसमुद्र, १४ भुजगवरद्वीप–भुजगवरसमुद्र, १५ कुशवरद्वीप–कुशवरसमुद्र, १६ क्रौंचवरद्वीप–क्रौंचवरसमुद्र।

इसी प्रकार अन्तिम स्वयभूरमण समुद्र से प्रारम्भ होकर सोलह समुद्र-द्वीपो के नाम निम्नप्रकार हैं – १ स्वयभूरमणसमुद्र–स्वयभूरमणद्वीप, २ अहीन्द्रवरसमुद्र–अहीन्द्रवरद्वीप, ३ देववरसमुद्र–देववरद्वीप, ४ यक्षवरसमुद्र–यक्षवरद्वीप, ५ भूतवरसमुद्र–भूतवरद्वीप, ६ नागवरसमुद्र–नागवरद्वीप, ७ वैडूर्यसमुद्र–वैडूर्यद्वीप, ८ वज्रवरसमुद्र–वज्रवरद्वीप, ९ काञ्चनसमुद्र–काञ्चनद्वीप, १० रुप्यवरसमुद्र–रुप्यवरद्वीप, ११ हिगुलसमुद्र–हिगुलद्वीप, १२ अञ्जनवरसमुद्र–अञ्जनवर द्वीप, १३ श्यामसमुद्र–श्यामद्वीप, १४ सिन्दूरसमुद्र–सिन्दूरद्वीप, १५ हरितासससमुद्र–हरितासद्वीप, १६ मन शिलसमुद्र–मन शिलद्वीप। हरिवशपुराण, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थो में कुछ समुद्रो के रसों का भी वर्णन किया गया है। उक्त द्वीप-समुद्रो की अनेक विशेषताओं का वर्णन भी वहाँ से जानना चाहिए। **(– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ४७०)**

२. वरैयाजी ने 'जैन जागरकी' नामक एक विस्तृत लेख लिखा है, जिसमें तीन लोक का वर्णन किया गया है। (स्मृतिग्रन्थ, पृष्ठ २४३–२५२ देखें।)

धन्य मुनिदशा

मुनि इन्द्रिय-विषयो से उपेक्षित होकर सदाकाल ज्ञान, ध्यान और तपश्चरण मे लीन रहते है। आहार के वास्ते किसी से याचना नही करते। भोजन के समय गृहस्थो के घर जहाँ तक किसी को जाने की मनाही नही है, वहाँ तक जाते है। बिजली के चमत्कारवत् दर्शन देकर यदि किसी ने भक्तिपूर्वक भोजनार्थ तिष्ठने के लिए प्रार्थना नही की तो तत्काल वापिस लौट जाते है। दिन मे केवल एक बार ही एक स्थान मे खड़े होकर अन्न-जल का ग्रहण करते है।

समस्त पदार्थों से ममत्वरहित केवल शरीरमात्र परिग्रहसहित नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण करते हुए बिना सवारी पैदल पॉव अनेक देशो मे विहार करते हुए भव्य जीवो को धर्मोपदेश देकर स्व-पर का कल्याण करते हैं। शरीर से ममत्व न होने के कारण अनेक रोग आने पर भी रोग का इलाज नही करते। पैर मे कॉटा लग जाए तो उसको भी नहीं निकालते।

पत्थर-सुवर्ण को समान समझते हैं, स्तुति तथा निन्दा करनेवालो को समदृष्टि से देखते है, शत्रु और मित्र जिनके लिए समान है। यदि कोई दुष्ट आकर उनको कष्ट देवे तो समभाव धारण करके ध्यान में लीन हो जाते है और जब तक वह उपसर्ग दूर नहीं हो, तब तक उस स्थान से नही उठते।

केश-लुञ्चन अपने हाथो से करते हैं। दन्त-धोवन तथा स्नान की तरफ जिनका कभी उपयोग ही नहीं जाता। ध्यान मे ही जिनका समस्त काल व्यतीत होता है। कदाचित् निद्रा की बाधा होने पर भूमि पर किञ्चित् काल के लिए शयनकर पुन ज्ञान-ध्यान मे लीन हो जाते हैं।

– गुरुवर्य गोपालदास वरैया

'सार्वधर्म' (लेख), स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ २४२)

चतुर्थ अध्याय

मुक्ति के सोपान

(दोहा)

गुणस्थान की वृद्धि को, जान मुक्ति-सोपान।
शीघ्र मिले निर्वाण पद, निश्चय से यह मान।।

प्रश्न ४७२ — ससार मे समस्त प्राणी सुख को चाहते हैं और सुख का ही उपाय करते है, फिर भी सुख को प्राप्त क्यो नही होते?

उत्तर — ससारी जीव असली सुख का स्वरूप और उसका उपाय न तो जानते हैं और न उसका साधन करते हैं, इसलिए सुख को प्राप्त नहीं होते।

प्रश्न ४७३ — असली सुख का क्या स्वरूप है?

उत्तर — आह्लाद स्वरूप जीव के अनुजीवीगुण को **असली सुख** कहते हैं, यही जीव का विशेष स्वभाव है, परन्तु ससारी जीवो ने भ्रमवश साता वेदनीयकर्म के उदयजनित साता परिणाम (असली सुख की वैभाविक परिणति) को ही सुख मान रखा है।

प्रश्न ४७४ — ससारी जीव को असली सुख क्यो नहीं मिलता है?

उत्तर — कर्मोदय के निमित्त से उस सुख का घात हो रहा है, इस कारण ससारी जीव को असली सुख नहीं मिलता है।

प्रश्न ४७५ — ससारी जीव को असली सुख कब मिल सकता है?

उत्तर — ससारी जीव को असली सुख **मोक्ष होने** पर मिल सकता है।

प्रश्न ४७६ – मोक्ष का स्वरूप क्या है?

उत्तर – आत्मा से समस्त कर्मों के विप्रमोक्ष (अत्यन्त वियोग) को **मोक्ष** कहते हैं।

प्रश्न ४७७ – मोक्ष की प्राप्ति का उपाय क्या है?

उत्तर – मोक्ष की प्राप्ति का उपाय **सवर और निर्जरा** है।

प्रश्न ४७८ – संवर किसे कहते हैं?

उत्तर – आस्रव के निरोध को सवर कहते हैं अर्थात् नवीन कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध न होना, **सवर** है।

प्रश्न ४७९ – निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर – आत्मा से पूर्वबद्ध कर्मो का एकदेश वियोग होना, **निर्जरा** है।

प्रश्न ४८० – सवर और निर्जरा होने का उपाय क्या है?

उत्तर – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनो पूर्ण गुणो की एकता ही सवर और निर्जरा होने का उपाय है।[१]

प्रश्न ४८१ – इन तीनो पूर्ण गुणो की एकता युगपत् होती है या क्रम से?

उत्तर – इन तीनो पूर्ण गुणो की एकता क्रम से होती है।

---

१. यहॉ पर 'पूर्ण गुणों की एकता' – ऐसा बारम्बार कहा गया है। उसका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की पूर्णता होने पर ही मोक्षमार्ग की वास्तविक पूर्णता होती है, तभी साक्षात् केवलज्ञान या मोक्ष की प्राप्ति होती है, अपूर्ण एकता साक्षात् केवलज्ञान या मोक्ष का कारण नहीं है, वह परम्परा से केवलज्ञान या मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन में क्षायिक सम्यग्दर्शन को, सम्यग्ज्ञान में केवलज्ञान को तथा सम्यक्चारित्र में यथाख्यातचारित्र को पूर्ण माना गया है। केवलज्ञान के बाद परमयथाख्यातचारित्र होने पर ही मोक्ष होता है।

उत्तर – सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवो के रहने का स्थान **सर्व लोक** है।

प्रश्न ४५८ – बादर एकेन्द्रिय जीव कहाँ रहते है?

उत्तर – बादर एकेन्द्रिय जीव किसी भी आधार का निमित्त पाकर निवास करते हैं।

प्रश्न ४५९ – त्रस जीव कहाँ रहते है?

उत्तर – त्रस जीव **त्रस नाली** मे ही रहते हैं।

प्रश्न ४६० – विकलत्रय जीव कहाँ रहते है?

उत्तर – विकलत्रय जीव कर्मभूमियो मे और अन्तिम आधे द्वीप तथा सम्पूर्ण स्वयभूरमण समुद्र मे रहते हैं।

प्रश्न ४६१ – पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च कहाँ-कहाँ रहते है?

उत्तर – पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मध्यलोक मे रहते हैं, परन्तु जलचर तिर्यञ्च लवण समुद्र, कालोदधि ममुद्र और स्वयभूरमण समुद्र के अलावा अन्य समुद्रो मे नहीं हैं।

प्रश्न ४६२ – नारकी जीव कहाँ रहते है?

उत्तर – नारकी जीव अधोलोक की सात पृथिवियो के (८४ लाख) नरक-बिलों मे रहते हैं।

प्रश्न ४६३ – भवनवासी और व्यन्तर देव कहाँ रहते है?

उत्तर – भवनवासी और व्यन्तर देव अधोलोक की पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग और पङ्कभाग मे तथा मध्यलोक मे सर्वत्र रहते हैं।

प्रश्न ४६४ – ज्योतिषी देव कहाँ रहते है?

उत्तर – पृथ्वी से सात सौ नब्बे (७९०) योजन की ऊँचाई से लगाकर नौ सौ (९००) योजन की ऊँचाई तक अर्थात् एक सौ दश (११०) योजन आकाश मे एक राजू प्रमाण सम्पूर्ण **मध्यलोक** में **ज्योतिषी देव** निवास करते हैं।

प्रश्न ४६५ – वैमानिक देव कहाँ रहते है?

उत्तर – वैमानिक देव **ऊर्ध्वलोक** मे रहते हैं।

प्रश्न ४६६ – मनुष्य कहाँ रहते है?

उत्तर – मनुष्य, मनुष्यलोक (अढाई द्वीप) मे रहते हैं।

३.२४ लोक और उसके विभाग

प्रश्न ४६७ – लोक के कितने भाग हैं?

उत्तर – लोक के तीन भाग हैं – ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक।

प्रश्न ४६८ – अधोलोक कहाँ है?

उत्तर – मेरुपर्वत के नीचे सात राजू प्रमाण **अधोलोक** है।

प्रश्न ४६९ – ऊर्ध्वलोक कहाँ है?[१]

---

१ सुमेरुपर्वत की चोटी के ऊपर लोक-शिखरपर्यन्त **उर्ध्वलोक** है। नाप के हिसाब से यह प्रमाण ७ राजू मे १०००४० योजन कम है। उर्ध्वलोक के दो विभाग हैं – स्वर्गलोक और सिद्धलोक। स्वर्गलोक मे ऊपर-ऊपर स्वर्ग पटल स्थित हैं – इन पटलो के दो विभाग हैं – कल्प पटल और कल्पातीत पटल। कल्प पटलो के आठ युगलों मे सोलह कल्प हैं। सौधर्म-ईशान, सनत्कुमार-महेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र- महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत। पहले युगल मे २१, दूसरे युगल मे ६, तीसरे युगल मे ४, चौथे युगल मे २, पॉचवे युगल मे १, छठवे युगल मे १, सातवे युगल मे ३, आठवे युगल मे ३, इसप्रकार कुल ५२ कल्प पटल हैं। इनमे इन्द्र, सामानिक आदि दश-दश जाति के देव रहते हैं। इन बावन पटलो के ऊपर कल्पातीत पटल हैं, जिनमे नव ग्रैवेयक के ९, नव अनुदिश का १, पञ्च अनुतर का १, इसप्रकार कुल ११ कल्पातीत पटल हैं। कल्प और कल्पातीत पटलो को मिलाने पर कुल ६३ पटल हैं। इन ६३ पटलो के नाम भी तिलोयपण्णत्ति, हरिवंशपुराण, त्रिलोकसार, राजवार्तिक आदि ग्रन्थो से जानना चाहिए। ये सभी पटल लाखों योजनो के अन्तराल से ऊपर-ऊपर स्थित हैं। प्रत्येक पटल मे विमान हैं, जो तीन प्रकार के हैं – इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक। यह सब रचना लोकशिखर से २९ योजन ४२५ धनुष नीचे तक है, यह **स्वर्गलोक** कहलाता है। इसके ऊपर लोकशिखर पर **सिद्धलोक** है। इसके आगे लोक का अन्त हो जाता है। **(– जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ४४४)**

उत्तर — मेरुपर्वत के ऊपर लोक के अन्त पर्यन्त **ऊर्ध्वलोक** है।

प्रश्न ४७० — मध्यलोक कहाँ है?

उत्तर — एक लाख चालीस (१,०००,४०) योजन मेरुपर्वत की ऊँचाई के बराबर **मध्यलोक** है।

प्रश्न ४७१ — मध्यलोक का विशेष स्वरूप क्या है?

उत्तर — मध्यलोक के अत्यन्त बीच मे एक लाख योजन चौडाईवाला थाली के समान गोल **जम्बूद्वीप** है। जम्बूद्वीप के बीच मे एक लाख चालीस योजन ऊँचा **सुमेरुपर्वत** है, जिसकी एक हजार योजन जमीन के भीतर **मूल** है, जो निन्याणवे हजार योजन **पृथ्वी के ऊपर** है और जिसकी चालीस योजन की **चूलिका (चोटी)** है।

जम्बूद्वीप के बीच मे पश्चिम-पूर्व की तरफ लम्बायमान **छह कुलाचल** पर्वत हैं, जिनसे जम्बूद्वीप के **सात खण्ड** (क्षेत्र या वर्ष) हैं। इन सातो खण्डो के नाम इस प्रकार हैं — १ भरत, २ हैमवत, ३ हरि, ४ विदेह, ५ रम्यक, ६ हैरण्यवत और ७ ऐरावत। विदेहक्षेत्र मे (गजदन्त पर्वतो के बीच मे) सुमेरु पर्वत से उत्तर की तरफ **उत्तरकुरु** और दक्षिण की तरफ **देवकुरु** हैं।

जम्बूद्वीप के चारो तरफ वलय के आकारवाला खाई की तरह घेरे हुए दो लाख योजन चौडाईवाला **लवणसमुद्र** है। लवणसमुद्र को चारो तरफ से घेरे हुए चार लाख योजन चौडाई वाला **धातकीखण्डद्वीप** है। इस धातकीखण्डद्वीप मे पूर्व और पश्चिम दिशा मे दो मेरुपर्वत हैं। प्रत्येक मेरु सम्बन्धी क्षेत्र, कुलाचल आदि की सब रचना जम्बूद्वीप के समान, परन्तु अधिक विस्तारवाली रचना है।

धातकीखण्डद्वीप को चारो तरफ घेरे हुए आठ लाख योजन

विस्तारवाला कालोदधि समुद्र है और कालोदधि को घेरे हुए सोलह लाख योजन विस्तारवाला **पुष्करवरद्वीप** है।

पुष्करवरद्वीप के बीचो-बीच वलय के आकारवाला, पृथ्वी पर एक हजार बाईस योजन चौडाईवाला, बीच मे सात सौ तेईस योजन चौडाईवाला और ऊपर चार सौ चौबीस योजन चौडाईवाला तथा सतरह सौ इक्कीस योजन ऊँचाईवाला तथा जमीन के भीतर जिस की जड चार सौ सवा तीस योजन है – ऐसा **मानुषोत्तर** नामक पर्वत है, जिससे पुष्करवरद्वीप के दो खण्ड हो जाते हैं। पुष्करवरद्वीप के पहले अर्द्ध भाग मे धातकीखण्डद्वीप के समान, परन्तु अधिक विस्तारवाली सब रचना है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप, लवणोदधिसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदधिसमुद्र और पुष्करार्द्धद्वीप – इतने क्षेत्र को **नरलोक** या **मनुष्यलोक** कहते हैं।

पुष्करद्वीप से आगे परस्पर एक दूसरे को वलयाकार मे घेरे हुए दूने-दूने विस्तारवाले मध्यलोक के अन्त पर्यन्त **असख्यात द्वीप और समुद्र** हैं।

पॉच मेरु से सम्बन्धित पॉच भरत, पॉच ऐरावत, देवकुरु और उत्तरकुरु को छोडकर पाँच विदेह – इस प्रकार सब मिलाकर **पन्द्रह कर्मभूमियाँ** हैं। पॉच हैमवत और पाँच हैरण्यवत – इन दश क्षेत्रो मे **जघन्य भोगभूमियाँ** हैं, पॉच हरि और पाँच रम्यक – इन दश क्षेत्रो मे **मध्यम भोगभूमियाँ** हैं तथा पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु – इन दश क्षेत्रो मे **उत्तम भोगभूमियाँ** हैं।

जहाँ पर असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, और शिल्प – इन षट्कर्मों की प्रवृत्ति होती है, उसे **कर्मभूमि** कहते हैं। जहाँ इनकी प्रवृति नहीं होती है, उसे **भोगभूमि** कहते हैं।

प्रश्न ४८२ — इन तीनो पूर्ण गुणो की एकता होने का क्रम किस प्रकार है?

उत्तर — जैसे-जैसे गुणस्थान बढते जाते हैं, वैसे-वैसे ही ये गुण भी बढ़ते हुए अन्त मे पूर्ण होते हैं।

प्रश्न ४८३ — गुणस्थान किसे कहते है?

उत्तर — मोह और योग के निमित्त से आत्मा के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप गुणों की तारतम्यरूप (उत्तरोत्तर वृद्धिङ्गत) अवस्था-विशेष को **गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ४८४ — गुणस्थान के कितने भेद है?

उत्तर — गुणस्थान के **चौदह** भेद हैं — १ मिथ्यात्व, २ मासादन, ३ मिश्र, ४ अविरतसम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशान्तमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगकवेली और १४ अयोगकेवली।

प्रश्न ४८५ — गुणस्थानो के इन नामो का कारण कौन है?

उत्तर — गुणस्थानो के इन नामो का कारण मोहनीयकर्म और योग है।

प्रश्न ४८६ — किस-किस गुणस्थान के क्या-क्या निमित्त है?

उत्तर — शुरु के चार गुणस्थान तो **दर्शनमोहनीयकर्म के निमित्त** से होते हैं, पॉचवे गुणस्थान से बारहवे गुणस्थान पर्यंत आठ गुणस्थान **चारित्रमोहनीयकर्म के निमित्त** से होते हैं तथा तेरहवॉ और चौदहवाँ — ये दो गुणस्थान **योग के निमित्त** से होते हैं।

पहला, मिथ्यात्व गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से होता है, इसमे आत्मा के परिणाम मिथ्यात्वरूप होते हैं।

चौथा, अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान दर्शनमोहनीयकर्म के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से होता है। इस गुणस्थान में आत्मा के सम्यग्दर्शनगुण का प्रादुर्भाव हो जाता है।

तीसरा, मिश्र गुणस्थान सम्यक्-मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीयकर्म की प्रकृति के उदय से होता है। इस गुणस्थान मे आत्मा के परिणाम सम्यक्-मिथ्यात्व अर्थात् उभयरूप होते हैं।

पहले गुणस्थान मे औदयिकभाव, चौथे गुणस्थान मे औपशमिक, क्षायिक अथवा क्षायोपशमिकभाव और तीसरे गुणस्थान मे औदयिकभाव होते हैं।[१]

दूसरा, सासादन गुणस्थान दर्शनमोहनीयकर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम – इन चार अवस्थाओ मे से किसी भी अवस्था की अपेक्षा नहीं रखता है, इसलिए यहाँ पर दर्शनमोहनीयकर्म की अपेक्षा पारिणामिकभाव है, किन्तु अनन्तानुबन्धीरूप चारित्रमोहनीयकर्म का उदय होने से इस गुणस्थान मे चारित्रमोहनीयकर्म की अपेक्षा औदयिकभाव भी कहा जा सकता हैं। इस गुणस्थान मे अनन्तानुबन्धी के उदय से सम्यक्त्व का घात हो गया है, इसलिए यहाँ सम्यक्त्व नहीं है लेकिन मिथ्यात्व का उदय भी नहीं आया है, इसलिए मिथ्यात्व परिणाम भी नहीं है। अतएव यह गुणस्थान मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की अपेक्षा से अनुदयरूप है।

---

१. यद्यपि इस गुणस्थान मे सम्यक्-मिथ्यात्वप्रकृति का उदय होने से यहाँ औदयिकभाव कहा है, तथापि षट्खण्डागम, गोम्मटसार, राजवार्तिक आदि ग्रन्थों मे इस गुणस्थान के भाव को पाँचवें गुणस्थान के समान जात्यन्तररूप क्षायोपशमिकभाव माना है, क्योंकि यहाँ अभी सम्यक्श्रद्धान का पूर्ण अभाव नहीं हुआ है।

(– धवला, १/१,१,११/१६८)

पाँचवे, देशविरत गुणस्थान से दशवे, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक छह गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्म के क्षयोपशम से होते हैं, इसलिए इन गुणस्थानों में क्षायोपशमिकभाव होते हैं। इन गुणस्थानों में सम्यक्चारित्रगुण की क्रम से वृद्धि होती जाती है।

ग्यारहवाँ, उपशान्तमोह गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्म के उपशम से होता है, इसलिए ग्यारहवे गुणस्थान मे औपशमिकभाव होता है। यद्यपि यहाँ पर चारित्रमोहनीयकर्म का पूर्णतया उपशम हो जाता है, तथापि योग का सद्भाव होने से पूर्ण चारित्र नहीं है, क्योकि सम्यक्चारित्र के लक्षण मे 'योग और कषाय के अभाव से सम्यक्चारित्र होता है' – ऐसा लिखा है।

बारहवाँ, क्षीणमोह गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्म के क्षय से होता है, इसलिए यहाँ क्षायिकभाव होता है। इस गुणस्थान मे भी ग्यारहवे गुणस्थान के समान सम्यक्चारित्र की पूर्णता नहीं है।

सम्यग्ज्ञानगुण यद्यपि चौथे गुणस्थान मे ही प्रगट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि आत्मा का ज्ञानगुण (मति–श्रुतज्ञान के रूप मे) अनादिकाल से प्रवाहरूप चला आ रहा है, तथापि दर्शनमोहनीय कर्म का उदय होने से वह ज्ञान मिथ्यारूप था, परन्तु चौथे गुणस्थान मे जब दर्शनमोहनीयकर्म के उदय का अभाव हो जाता है, तब वही आत्मा का ज्ञानगुण, सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है।

पञ्चम-षष्ठम आदि गुणस्थानो मे तपश्चरणादि के निमित्त से अवधिज्ञान–मन पर्ययज्ञान भी किसी–किसी जीव के प्रगट हो जाते हैं, तथापि केवलज्ञान के बिना सम्यग्ज्ञान की पूर्णता नहीं होती, इसलिए इस बारहवे गुणस्थान मे यद्यपि सम्यग्दर्शन की पूर्णता हो गई है (क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्व के बिना क्षपकश्रेणी नहीं चढता और क्षपकश्रेणी के

बिना बारहवाँ गुणस्थान नहीं होता), तथापि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रगुण अभी तक अपूर्ण है, इसीलिए बारहवे गुणस्थान से भी मोक्ष नहीं होता।

तेरहवाँ, सयोगकेवली गुणस्थान योगों के सद्भाव की अपेक्षा कहा गया है, इसीलिए यह सयोग है और केवलज्ञान के कारण इसका नाम सयोगकेवली है। इस गुणस्थान मे सम्यग्ज्ञान की पूर्णता हो जाती है, परन्तु चारित्रगुण की पूर्णता नही होने से मोक्ष नही होता।

चौदहवाँ, अयोगकेवली गुणस्थान योगो के अभाव की अपेक्षा रखता है, इसलिए इसका नाम अयोगकेवली है। इस गुणस्थान मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनो गुणो की पूर्णता हो जाती है, अतएव मोक्ष भी अब दूर नहीं रहा अर्थात् अ इ उ ऋ लृ – इन पॉच ह्रस्व स्वरो के उच्चारण करने मे जितना काल लगता है, उतने ही काल मे मोक्ष हो जाता है।

प्रश्न ४८७ – मिथ्यात्व गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अतत्त्वार्थ-श्रद्धानरूप आत्मा के विशेष परिणाम को **मिथ्यात्व गुणस्थान** कहते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान मे रहनेवाला जीव विपरीत श्रद्धान करता है और सच्चे धर्म की तरफ उसकी रुचि नहीं होती। जैसे पित्त-ज्वरवाले रोगी को दुग्ध आदि रस कटुक (कडवे) लगते हैं, उसी प्रकार इसको भी समीचीन धर्म अच्छा नहीं लगता।

प्रश्न ४८८ – मिथ्यात्व गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – अभेद विवक्षा से कर्म की १४८ प्रकृतियो में से स्पर्श आदि बीस प्रकृतियो का चार मे और पॉच बन्धन तथा पॉच सघात का पॉच शरीरो मे अन्तर्भाव होता है। अत कुल प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से

१४८ और अभेद विवक्षा से मात्र १२२ हैं।

सम्यक्-मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति — इन दो प्रकृतियो का बन्ध नही होता हैं, क्योकि इन दोनो का आविर्भाव सम्यक्त्व परिणामो से सत्ताभूत मिथ्यात्वप्रकृति के तीन खण्ड करने पर होता है, इस कारण अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की बन्ध-योग्य प्रकृतियाँ १२० और सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ १४६ हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान मे तीर्थङ्करप्रकृति, आहारक शरीर और आहारक आङ्गोपाङ्ग — इन तीन प्रकृतियो का बन्ध नहीं होता है, क्योकि इन तीनो प्रकृतियो का बन्ध मम्यग्दृष्टियो को ही होता है। इसलिए इस मिथ्यात्व गुणस्थान मे एक सौ बीस मे से तीन घटाने पर **११७ प्रकृतियों का बन्ध** हो सकता है।

प्रश्न ४८९ — मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर — मिथ्यात्व गुणस्थान मे सम्यक्प्रकृति, सम्यक्-मिथ्यात्व, आहारक शरीर, आहारक आङ्गोपाङ्ग और तीर्थङ्करप्रकृति — इन पाँच प्रकृतियो का उदय नहीं होता। इसलिए १२२ मे से पाँच घटाने पर **११७ प्रकृतियो का उदय** हो सकता है।

प्रश्न ४९० — मिथ्यात्व गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व (सत्ता) रह सकता है?[१]

---

१. **प्रश्न — बन्ध, सत्त्व और उदय में क्या अन्तर है?**

उत्तर — योग और कषाय के निमित्त से जब कार्मणवर्गणा कर्मरूप से परिणत होकर जीव के प्रदेशों मे बन्ध को प्राप्त होती है, तब प्रथम समय में वह कर्म 'बन्ध' कहलाता है। पश्चात् वे ही कर्म द्वितीय समय से लेकर जब तक उदय को प्राप्त नहीं होते, तब तक उन कर्मों का 'सत्त्व' कहलाता है तथा तत्पश्चात् जब वे कर्म फल देते हैं, वह उन कर्मों का 'उदय' कहलाता है। **(— कषायपाहुड, १/§२५०/२९१)**

उत्तर — मिथ्यात्व गुणस्थान मे **१४८ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ४९१ — सासादन गुणस्थान किसे कहते है?

उत्तर — प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल मे जब अधिक से अधिक छह आवली और कम से कम एक समय बाकी रहता है, उस समय किसी एक अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व का नाश हो जाता है, उसे **सासादन गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ४९२ (अ) — सम्यक्त्व के कितने भेद-प्रभेद है, उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर — सम्यक्त्व के तीन भेद हैं —

१ दर्शनमोहनीय की तीन और अनन्तानुबन्धी की चार — इन सात प्रकृतियो के उपशम से जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उसे **औपशमिक सम्यक्त्व** कहते हैं।

२ इन सात प्रकृतियो के क्षय मे जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उसे **क्षायिक सम्यक्त्व** कहते हैं।

३ इन्हीं सात मे से छह प्रकृतियो के अनुदय और सम्यक्प्रकृति नामक दर्शनमोहनीयकर्म की एक देशघाति प्रकृति के उदय से जो सम्यक्त्व होता है, उसे **क्षायोपशमिक सम्यक्त्व** कहते हैं।

उपशम सम्यक्त्व के दो भेद हैं — प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

प्रश्न ४९२ (ब) — प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर — अनादि मिथ्यादृष्टि के पॉच और सादि मिथ्यादृष्टि के

सात प्रकृतियों के उपशम से जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, उसे **प्रथमोपशम सम्यक्त्व** कहते हैं।

प्रश्न ४९३ — द्वितीयोपशम सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर — सातवे गुणस्थान मे क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणी चढने के सम्मुख अवस्था मे अनन्तानुबन्धी कषाय-चतुष्टय का अप्रत्याख्यानादि कषायरूप विसयोजन करके तथा दर्शनमोहनीय की तीनो प्रकृतियो का उपशम करके जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसे **द्वितीयोपशम सम्यक्त्व** कहते हैं।

प्रश्न ४९४ — आवली से क्या तात्पर्य है?

उत्तर — असख्यात समय की एक **आवली** होती है।

प्रश्न ४९५ — सासादन गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — मिथ्यात्व गुणस्थान मे जिन ११७ प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है, उसमे से मिथ्यात्व गुणस्थान मे जिनकी व्युच्छित्ति हो सकती है — ऐसी सोलह व्युच्छिन्न प्रकृतियो के घटाने पर **१०१ प्रकृतियों का बन्ध** सासादन गुणस्थान मे हो सकता है। वे सोलह प्रकृतियाँ हैं — मिथ्यात्व, नपुसकवेद, नरकायु, नरकगति, नरक- गत्यानुपूर्वी, हुण्डक सस्थान, असप्राप्तासृपाटिका सहनन, एकेन्द्रिय जाति, विकलत्रय की तीन जातियाँ, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण।

प्रश्न ४९६ — व्युच्छित्ति किसे कहते है?

उत्तर — व्युच्छित्ति का अर्थ **सम्बन्ध-विच्छेद** है। जिस गुणस्थान मे जिन कर्म-प्रकृतियो के बन्ध, उदय अथवा सत्त्व की व्युच्छित्ति कही जाती है, उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियो का बन्ध, उदय अथवा

सत्त्व पाया जाता है। उसके बाद किसी भी गुणस्थान में उन प्रकृतियो का बन्ध, उदय अथवा सत्त्व नहीं होता है, इसी को **व्युच्छित्ति** कहते हैं।

प्रश्न ४९७ — सासादन गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर — मिथ्यात्व गुणस्थान मे जिन ११७ प्रकृतियो का उदय कहा है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण — इन पाँच के घटाने पर ११२ बचती हैं, परन्तु नरकगत्यानुपूर्वी का भी सासादन गुणस्थान मे उदय नहीं होता, इसलिए सासादन गुणस्थान मे **१११ प्रकृतियो का उदय** हो सकता है।

प्रश्न ४९८ — सासादन गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर — सासादन गुणस्थान मे **१४५ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है, क्योंकि इस गुणस्थान में कुल १४८ प्रकृतियों मे से तीर्थङ्करप्रकृति, आहारकशरीर और आहारक-अङ्गोपाङ्ग — इन तीन प्रकृतियो की सत्ता नहीं रहती।

प्रश्न ४९९ — मिश्र गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर — सम्यक्-मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से जीव मे न तो केवल सम्यक्त्वरूप परिणाम होता है और न केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम होता है, किन्तु दही-गुड के मिले हुए स्वाद की तरह एक भिन्न जाति का मिश्र परिणाम होता है, इसी को **मिश्र गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ५०० — मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — सासादन गुणस्थान मे बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १०१ होती हैं, इनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान- माया-लोभ,

स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध सस्थान, स्वाति सस्थान, कुब्जक सस्थान, वामन सस्थान, वज्रनाराच सहनन, नाराच सहनन, अर्द्धनाराच सहनन, कीलित सहनन, अप्रशस्त-विहायोगति, स्त्रीवेद, नीच गोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत — इन २५ प्रकृतियो की बन्ध-व्युच्छित्ति हो जाती है, अत ७६ प्रकृतियाँ शेष रहती है, परन्तु इस गुणस्थान मे किसी भी आयुकर्म का बन्ध नहीं होता है। इन ७६ मे से मनुष्यायु और देवायु — दो के घटाने पर **७४ प्रकृतियों का बन्ध** हो सकता है क्योकि नरकायु की पहले गुणस्थान मे और तिर्यगायु की दूसरे गुणस्थान मे ही व्युच्छित्ति हो जाती है।

प्रश्न ५०१ — मिश्र गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर — सासादन गुणस्थान में १११ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ और स्थावर — इन ९ प्रकृतियो की उदय-व्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थान मे हो जाती है, अत १०२ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। साथ ही चार आनुपूर्वी मे से नरक-गत्यानुपूर्वी की व्युच्छित्ति पहले ही हो जाने से बाकी तीन आनुपूर्वी का भी उदय नहीं होता, इस प्रकार शेष ९९ प्रकृतियाँ तथा एक सम्यक्-मिथ्यात्व प्रकृति को मिलाकर कुल **१०० प्रकृतियों का उदय** मिश्र गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५०२ — मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर — मिश्र गुणस्थान मे तीर्थङ्करप्रकृति के बिना **१४७ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५०३ — अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – दर्शनमोहनीय की तीन और अनन्तानुबन्धी की चार – इन सात प्रकृतियो के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से सम्यक्त्वसहित और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ के उदय से व्रतरहित परिणाम को **अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान** कहते हैं।

प्रश्न ५०४ – अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – मिश्र गुणस्थान मे ७४ प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है, परन्तु अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान मे मनुष्यायु, देवायु और तीर्थङ्करप्रकृति – इन तीनसहित **७७ प्रकृतियो का बन्ध** हो सकता है।

प्रश्न ५०५ – अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर – मिश्र गुणस्थान मे १०० प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृति – सम्यक्-मिथ्यात्व के घटाने पर रही ९९ बचती हैं, परन्तु इनमे चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति – इन पाँच प्रकृतियो को मिलाने पर **१०४ प्रकृतियो का उदय** अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५०६ – अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है?[१]

उत्तर – अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान मे सब अर्थात् **१४८ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान मे मात्र **१४१ प्रकृतियो का ही सत्त्व** रह सकता है।

---

१. यहाँ चौथे से लेकर ग्यारहवे गुणस्थान तक क्षायिक सम्यग्दृष्टियो मे 'सत्त्व' की अपेक्षा अन्तर बताया जायेगा, परन्तु बन्ध और उदय की अपेक्षा गुणस्थानों के भावों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि और अन्य सम्यग्दृष्टियो में अन्तर नहीं है।

प्रश्न ५०७ – देशविरत गुणस्थान किसे कहते है?

उत्तर – जहाँ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय से यद्यपि सयमभाव नही होता, तथापि अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के क्षयोपशम से श्रावक-व्रतरूप देशचारित्र होता है, इसी को **देशविरत गुणस्थान** कहते हैं।

पॉचवे आदि ऊपर के समस्त गुणस्थानो मे सम्यग्दर्शन और उसका अविनाभावी सम्यग्ज्ञान अवश्य होता है, क्योकि इनके बिना पॉचवे, छठवे आदि गुणस्थान नहीं होते।

प्रश्न ५०८ – देशविरत गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बन्ध होता है?

उत्तर – अविरत-सम्यक्त्व गुणस्थान मे ७७ प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराच सहनन – इन दस के घटाने पर शेष ६७ **प्रकृतियो का बन्ध** देशविरत गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५०९ – देशविरत गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर – चौथे गुणस्थान मे १०४ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छन्न प्रकृतियॉ – प्रत्याख्यावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देव-गत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरक- गत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक-अङ्गोपाङ्ग, मनुष्य- गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति – इन सतरह के घटाने पर शेष ८७ **प्रकृतियों का उदय** देशविरत गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५१० – देशविरत गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर – चौथे गुणस्थान में १४८ प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृति – एक नरकायु के बिना **१४७ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान मे **१४० प्रकृतियो का सत्त्व** देशविरत गुणस्थान मे रह सकता है।

प्रश्न ५११ – प्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते है?

उत्तर – इस गुणस्थान मे सज्वलन कषाय और हास्यादि नोकषाय के तीव्र उदय से सयमभाव के साथ मलजनक प्रमादयुक्त परिणाम होते हैं। यद्यपि सज्वलन और नोकषाय का उदय चारित्रगुण का विरोधी है, तथापि प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से उत्पन्न सकल सयम को घातने मे वह समर्थ नहीं है, इस कारण उसे भी उपचार से सयम का उत्पादक कहा है, इसीलिए इस गुणस्थानवर्ती मुनि को **प्रमत्तविरत** अर्थात् **चित्रलाचरणी** कहते हैं – यह **प्रमत्तविरत गुणस्थान** है।

प्रश्न ५१२ – प्रमत्तविरत गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है?

उत्तर – देशविरत गुणस्थान मे जो ६७ प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है, उनमे से प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ – इन चार व्युच्छिन्न प्रकृतियो के घटाने पर शेष **६३ प्रकृतियो का बन्ध** छठवे प्रमत्तविरत गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५१३ – प्रमत्तविरत गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर – देशविरत गुणस्थान मे ८७ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यग्गति, तिर्यगायु, उद्योत और नीचगोत्र – इन आठ के घटाने पर शेष ७९ प्रकृतियाँ बचती हैं, उनमे आहारक शरीर और आहारक

अङ्गोपाङ्ग – ये दो प्रकृतियाँ मिलाने से **८१ प्रकृतियो का उदय** प्रमत्तविरत गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५१४ – प्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर – देशविरत गुणस्थान मे १४७ प्रकृतियो की सत्ता कही है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति – एक तिर्यगायु के घटाने पर **१४६ प्रकृतियों का सत्त्व** प्रमत्तविरत गुणस्थान मे रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान मे **१३९ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५१५ – अप्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते है?

उत्तर – अप्रमत्तविरत गुणस्थान मे सज्वलन और नोकषाय का मन्द उदय होने से प्रमादरहित सयमभाव होता है, इस कारण इस गुणस्थानवर्ती मुनि का **सातवाँ अर्थात् अप्रमत्तविरत गुणस्थान** होता है।[1]

प्रश्न ५१६ – अप्रमत्तविरत गुणस्थान के कितने भेद है?

उत्तर – अप्रमत्तविरत गुणस्थान के दो भेद हैं – स्वस्थान अप्रमत्तविरत और सातिशय अप्रमत्तविरत।

प्रश्न ५१७ – स्वस्थान अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं?

उत्तर – जो मुनि हजारो बार छठवे से सातवे मे और सातवे से छठवे गुणस्थान मे आने-जाने रूप परिणाम करते हैं, उनके सातवे गुणस्थान को **स्वस्थान अप्रमत्तविरत** कहते हैं।

प्रश्न ५१८ – सातिशय अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं?

उत्तर – जो मुनि श्रेणी चढने के सन्मुख होते हैं, उनके सातवे

---

१. अप्रमत्तविरत गुणस्थान की बन्धयोग्य, उदययोग्य और सत्त्वयोग्य प्रकृतियों का वर्णन प्रश्न क्रमाङ्क ५३२ से ५३४ में दिया गया है, लेकिन वहाँ स्वस्थान अप्रमत्तविरत और सातिशय अप्रमत्तविरत की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है।

गुणस्थान को **सातिशय अप्रमत्तविरत** कहते हैं।

प्रश्न ५१९ – श्रेणी चढ़ने का पात्र कौन है?

उत्तर – क्षायिक सम्यग्दृष्टि और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि मुनि ही श्रेणी चढते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाला मुनि श्रेणी नहीं चढ सकता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला (मुनि) प्रथमोपशम सम्यक्त्व को छोडकर, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होकर, प्रथम ही अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का विसयोजन करके, दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करके, द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर अथवा तीनो प्रकृतियो का क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर **श्रेणी चढ़ने का पात्र** होता है।

प्रश्न ५२० – श्रेणी किसे कहते हैं?

उत्तर – जहाँ (सातिशय अप्रमत्तमयत मुनि के द्वाग) चारित्र मोहनीय कर्म की ममस्त प्रकृतियो का क्रम मे उपशम या क्षय होता है, उसे **श्रेणी** कहते हैं।

प्रश्न ५२१ – श्रेणी के कितने भेद है?

उत्तर – श्रेणी के दो भेद हैं – उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी।

प्रश्न ५२२ – उपशमश्रेणी किसे कहते है?

उत्तर – जिस श्रेणी मे चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियो का उपशम होता है, उसे **उपशमश्रेणी** कहते हैं।

प्रश्न ५२३ – क्षपकश्रेणी किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस श्रेणी मे चारित्र मोहनीय की इक्कीस प्रकृतियो का क्षय होता है, उसे **क्षपकश्रेणी** कहते हैं।

प्रश्न ५२४ – दोनो श्रेणियों में कौन–कौनसे जीव चढ़ते हैं?

उत्तर — क्षायिक सम्यग्दृष्टि (मुनि) तो दोनो श्रेणी चढ सकते हैं, परन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि मुनि उपशमश्रेणी मे ही चढ सकते हैं, क्षपकश्रेणी नहीं।

प्रश्न ५२५ — उपशमश्रेणी के कौन-कौनसे गुणस्थान हैं?

उत्तर — उपशमश्रेणी के गुणस्थान **चार** हैं — आठवॉ, नववॉ, दशवाँ और ग्यारहवॉ।

प्रश्न ५२६ — क्षपकश्रेणी के कौन-कौन से गुणस्थान हैं?

उत्तर — क्षपकश्रेणी के गुणस्थान **चार** हैं — आठवॉ, नववॉ, दशवॉ और बारहवॉ।

प्रश्न ५२७ — चारित्रमोहनीय की इक्कीस प्रकृतियो के उपशम तथा क्षय करने के लिए आत्मा के कौनसे परिणाम निमित्तकारण है?

उत्तर — चारित्रमोहनीय की समस्त प्रकृतियो के उपशम तथा क्षय करने के लिए आत्मा के तीन करण के परिणाम निमित्तकारण हैं — अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण।[१]

प्रश्न ५२८ — अधःकरण किसे कहते है?

उत्तर — जिस करण (परिणामसमूह) मे उपरितन (ऊपर के) समयवर्ती तथा अधस्तन (नीचे के) समयवर्ती जीवो के परिणाम अर्थात् भिन्न समयवर्ती अनेक जीवों के परिणाम सदृश अथवा विसदृश होते हैं, उसे **अधःकरण** कहते हैं। यह अध करण सातवे गुणस्थान मे सातिशय अप्रमत्तविरत के होता है।

---

१ यद्यपि सम्यग्दर्शन होने के पूर्व तथा ऊपर के गुणस्थान में आरोहण करने के पूर्व भी ये करण होते हैं, परन्तु चारित्रमोहनीय के उपशम और क्षय करने की अपेक्षा से उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी के इन तीनकारणों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण — इन दो करणों को पृथक् से गुणस्थान की सज्ञा भी दी गयी है। जबकि सातवें गुणस्थान में सातिशय अप्रमत्तविरत को अध करण होता है।

प्रश्न ५२९ – अपूर्वकरण गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस करण में उत्तरोत्तर अपूर्व-अपूर्व परिणाम होते जाते हैं अर्थात् भिन्न समयवर्ती अनेक जीवो के परिणाम सदा विसदृश ही होते हैं, परन्तु एक समयवर्ती अनेक जीवो के परिणाम सदृश या विसदृश होते हैं, उसे **अपूर्वकरण** कहते हैं – यही **अपूर्वकरण गुणस्थान** कहलाता है।

प्रश्न ५३० – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान किसे कहते है?

उत्तर – जिस करण में भिन्न समयवर्ती अनेक जीवो के परिणाम विसदृश ही होते हैं और एक समयवर्ती अनेक जीवो के परिणाम सदृश ही होते हैं, उसे **अनिवृत्तिकरण** कहते हैं – यही **अनिवृत्तिकरण गुणस्थान** कहलाता है।[१]

अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण – इन तीनो ही करणो के परिणाम उत्तरोत्तर प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धतासहित होते हैं।

प्रश्न ५३१ – अधःकरण का दृष्टान्त क्या है?

उत्तर – जैसे – देवदत्त नामक राजा के ३०७२ (तीन हजार बहत्तर) आदमी सेवक हैं, जो १६ विभागो मे विभाजित हैं – क्रमश विभाग क्रमाङ्क १ में १६२, २ में १६६, ३ मे १७०, ४ में १७४, ५ में १७८, ६ मे १८२, ७ में १८६, ८ में १९०, ९ में १९४, १० मे १९८, ११ मे २०२, १२ मे २०६, १३ मे २१०, १४ मे २१४, १५ मे २१८ और १६ में २२२ आदमी काम करते हैं।

पहले विभाग के १६२ आदमियो मे पहले आदमी का वेतन १

---

१. अपूर्वकरण गुणस्थान और अनिवृतिकरण गुणस्थान का बन्धयोग्य, उदययोग्य और सत्त्वयोग्य प्रकृतियों का वर्णन क्रमश प्रश्न क्रमाङ्क ५३५ से ५३७ और ५३८ से ५४० में दिया गया है।

रुपया, दूसरे का २ रुपया, तीसरे का ३ रुपया, इसी प्रकार क्रम से एक-एक बढते हुए १६२ वे आदमी का वेतन १६२ रुपया है।

दूसरे विभाग के १६६ आदमियो मे पहले आदमी का वेतन ४० रुपया और दूसरे आदि आदमियो का वेतन क्रम से एक-एक रुपया बढते हुए १६६ वे आदमी का वेतन २०५ रुपया है।

तीसरे विभाग के १७० आदमियो मे पहले आदमी का वेतन ८० रुपया और दूसरे आदि आदमियो का वेतन क्रम से एक-एक रुपया बढते हुए १७० वे आदमी का वेतन २४९ रुपया है।

चौथे विभाग मे १७४ आदमियो में पहले आदमी का वेतन १२१ रुपया और क्रम से अन्तिम आदमी का वेतन २९४ रुपया होता है।

इसी प्रकार क्रम मे पन्द्रहवें विभाग मे २१८ आदमियों मे से पहले आदमी का वेतन ६३८ रुपया और क्रम से अन्तिम आदमी का वेतन ८८५ रुपया होता है।

तथा अन्तिम सोलहवे विभाग मे २२२ आदमियो मे पहले का वेतन ६९१ रुपया और २२२ वे आदमी का वेतन ९१२ रुपया है।

– इस सम्पूर्ण दृष्टान्त मे पहले विभाग के प्रारम्भिक ४० आदमियो का वेतन ऊपर के विभागो के किसी भी आदमी के वेतन से नहीं मिलता तथा अन्तिम सोलहवे विभाग के आखिरी ४४ आदमियो का वेतन नीचे के विभागो के किसी भी आदमी के वेतन से नहीं मिलता है। शेष आदमियों के वेतन ऊपर-नीचे के विभागो के आदमियो के वेतनो के साथ यथासम्भव सदृश भी हैं।

इसी प्रकार यथार्थ मे भी अध करण के ऊपर के समयवाले जीवो के परिणामो और नीचे के समयवाले जीवो के परिणामों मे सदृशता यथासम्भव जानना चाहिए।

इसका विशेष स्वरूप गोम्मटसारजी के गुणस्थानाधिकार में तथा सुशीला उपन्यास के सोलहवे पर्व मे देख सकते हैं।

प्रश्न ५३२ — अप्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — प्रमत्तविरत गुणस्थान में जिन ६३ प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक — इन छह के घटाने पर शेष ५७ मे आहारक शरीर और आहारक अङ्गोपाङ्ग — इन दो प्रकृतियों को मिलाकर ५९ **प्रकृतियों का बन्ध** अप्रमत्तविरत गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५३३ — अप्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर — प्रमत्तविरत गुणस्थान मे जिन ८१ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृत्तियॉ — आहारक शरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, और स्त्यानगृद्धि — इन पाँच के घटाने पर शेष ७६ **प्रकृतियों का उदय** अप्रमत्तविरत गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५३४ — अप्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर — प्रमत्त-विरत गुणस्थान की तरह अप्रमत्तविरत गुणस्थान मे भी १४६ **प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा इस गुणस्थान में १३९ **प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५३५ — अपूर्वकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — अप्रमत्तविरत गुणस्थान मे जिन ५९ प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृति — एक देवायु के घटाने पर **५८ प्रकृतियों का बन्ध** अपूर्वकरण गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५३६ — अपूर्वकरण गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?

उत्तर — अप्रमत्तविरत गुणस्थान में जिन ७६ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियॉ — सम्यक्प्रकृति, अर्धनाराच, कीलक सस्थान और असप्राप्तासृपाटिका सहनन — इन चार के घटाने पर शेष **७२ प्रकृतियों का उदय** अपूर्वकरण गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५३७ — अपूर्वकरण गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रह सकता है?

उत्तर — अप्रमत्तविरत गुणस्थान मे जिन १४६ प्रकृतियो का सत्त्व हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ — इन चार को घटाकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम-श्रेणीवालो की अपेक्षा **१४२ प्रकृतियों का सत्त्व** अपूर्वकरण गुणस्थान में रह सकता है, किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालो की अपेक्षा इस गुणस्थान में दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतिरहित **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है। क्षपकश्रेणीवालो की अपेक्षा सातवें गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा दर्शनमोहनीय की तीन और एक देवायु — इन आठ को घटाने पर इस गुणस्थान में शेष **१३८ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५३८ — अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — अपूर्वकरण गुणस्थान में जिन ५८ प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — निद्रा, प्रचला, तीर्थङ्कर,

निर्माण, प्रशस्त-विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अङ्गोपाङ्ग, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग, देवगति, देव गत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा और भय – इन छत्तीस को घटाने पर शेष **२२ प्रकृतियो का बन्ध** अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५३९ – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर – अपूर्वकरण गुणस्थान मे जिन ७२ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियॉ – हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा – इन छह को घटाने पर शेष **६६ प्रकृतियों का उदय** अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५४० – अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व हो सकता है?

उत्तर – अपूर्वकरण गुणस्थान के समान इस अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे भी द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालो की अपेक्षा १४२ और क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालो की अपेक्षा इस गुणस्थान मे **१३९ प्रकृतियो का सत्त्व** तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणीवालो की अपेक्षा इस गुणस्थान मे **१३८ प्रकृतियों का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५४१ – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान किसे कहते है?

उत्तर – तीन करण के बाद अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त लोभ कषाय के उदय का अनुभव करते हुए जीव को **सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान** होता है।

प्रश्न ५४२ — सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियों का बन्ध हो सकता है?

उत्तर — अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे जिन २२ प्रकृतियो का बन्ध हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — पुरुषवेद, सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ — इन पाँच को घटाकर शेष **१७ प्रकृतियो का बन्ध** सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५४३ — सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय हो सकता है?

उत्तर — अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे जिन ६६ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद, मज्वलन क्रोध, मान, माया — इन छह को घटा देने पर शेष **६० प्रकृतियो का उदय** सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५४४ — सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रहता है?

उत्तर — अनिवृत्तिकरण गुणस्थान की तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीवालो की अपेक्षा **१४२ प्रकृतियो का सत्त्व** और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे भी रह सकता है, परन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणीवालो की अपेक्षा नववे गुणस्थान मे १३८ प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ — नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, विकलत्रय की तीन, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, अप्रत्याख्यानावरण की चार, प्रत्याख्यानावरण की चार, नोकषाय की नौ, सज्वलन क्रोध-मान-माया तीन — इन छत्तीस को घटा देने पर शेष **१०२ प्रकृतियों का सत्त्व** इस गुणस्थान में रह सकता है।

प्रश्न ५४५ – उपशान्तमोह गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर – चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियों का उपशम होने से यथाख्यातचारित्र को धारण करनेवाले मुनिराज को **उपशान्तमोह गुणस्थान** होता है।

इस गुणस्थान का काल समाप्त होने पर मोहनीय के उदय से जीव नीचे के गुणस्थानो मे क्रम से आ जाता है। वह छठवें से लेकर पहले गुणस्थान तक यथासम्भव आ सकता है।

प्रश्न ५४६ – उपशान्तमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?[१]

उत्तर – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे जिन १७ प्रकृतियो का बन्ध होता था, उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृतियॉं – ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अन्तराय की पॉच, यश कीर्ति और उच्चगोत्र – इन सोलह को घटा देने पर शेष **एकमात्र सातावेदनीय प्रकृति का बन्ध** होता है।

प्रश्न ५४७ – उपशान्तमोह गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियों का उदय हो सकता है?[१]

उत्तर – सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में जिन ६० प्रकृतियों का उदय हो सकता है, उनमें से (उपशमश्रेणी की अपेक्षा) एक व्युच्छिन्न प्रकृति – सज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष **५९ प्रकृतियों का उदय** उपशान्तमोह गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न ५४८ – उपशान्तमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व हो सकता है?

---

१. उपशान्तमोह गुणस्थान में क्षपकश्रेणीवाला जीव नहीं जाता।

उत्तर – आठवे, नववें और दशवें गुणस्थान की तरह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के **१४२ प्रकृतियों का सत्त्व** और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के **१३९ प्रकृतियों का सत्त्व** इस उपशान्तमोह गुणस्थान में रह सकता है।

प्रश्न ५४९ – क्षीणमोह गुणस्थान किसे कहते हैं? और वह किसे होता है?

उत्तर – मोहनीयकर्म के अत्यन्त क्षय होने से स्फटिक के बर्तन मे रखे हुए जल के समान अत्यन्त निर्मल, अविनाशी, यथाख्यातचारित्ररूप परिणामों के धारक मुनिराज को **बारहवाँ क्षीणमोह गुणस्थान** होता है।

प्रश्न ५५० – क्षीणमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है?

उत्तर – उपशान्तमोह गुणस्थान के समान क्षीणमोह गुणस्थान में भी **एकमात्र सातावेदनीय प्रकृति का बन्ध** होता है।

प्रश्न ५५१ – क्षीणमोह गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उत्तर – उपशान्तमोह गुणस्थान में जिन ५९ प्रकृतियो का उदय होता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – वज्रनाराच और नाराच – इन दो को घटा देने पर शेष **५७ प्रकृतियों का उदय** क्षीणमोह गुणस्थान मे हो सकता है।[१]

---

१. यद्यपि क्षपकश्रेणीवाला जीव सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान से सीधे क्षीणमोह गुणस्थान में आता है, तथापि यहाँ मात्र उपशान्तमोह गुणस्थान के साथ मात्र तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि **"सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में जिन ६० प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से (क्षपकश्रेणी की अपेक्षा) व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – संज्वलन लोभ, वज्रनाराच और नाराच – इन तीन को घटा देने पर शेष ५७ प्रकृतियों का उदय क्षीणमोह गुणस्थान में हो सकता है।"**

प्रश्न ५५२ — क्षीणमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रहता है?

उत्तर — सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान मे क्षपकश्रेणीवालो की अपेक्षा १०२ प्रकृतियो का सत्त्व रह सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृति — सज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष **१०१ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५५३ — सयोगकेवली गुणस्थान किसे कहते है? और वह किसे होता है?

उत्तर — जब घातिया कर्मों की सैंतालीस प्रकृतियाँ — ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नौ, मोहनीय की अट्ठाईस और अन्तराय की पाँच तथा अघातिया कर्मो की सोलह प्रकृतियाँ — नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, विकलत्रय की तीन, आयु की तीन, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर — इन त्रेसठ प्रकृतियों का क्षय हो जाने से लोकालोक-प्रकाशक केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। वे अपनी दिव्यध्वनि से भव्य जीवो को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर ससार मे मोक्षमार्ग का प्रकाश करते हैं, तब मनोयोग, वचनयोग और काययोग के धारक परम भट्टारक अरहन्त भगवान को **सयोगकेवली** नामक तेरहवाँ गुणस्थान होता है।

प्रश्न ५५४ — सयोगकेवली गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का बन्ध होता है?

उत्तर — उपशान्तमोह गुणस्थान और क्षीणमोह गुणस्थान के समान सयोगकेवली गुणस्थान मे भी **एकमात्र सातावेदनीय प्रकृति का बन्ध** होता है।

प्रश्न ५५५ — सयोगकेवली गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उत्तर – क्षीणमोह गुणस्थान मे जिन ५७ प्रकृतियो का उदय हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – ज्ञानावरण की पॉच, अन्तराय की पॉच, दर्शनावरण की चार, निद्रा और प्रचला – इन सोलह को घटा देने पर शेष ४१ प्रकृतियाँ और तीर्थङ्करप्रकृति को मिलाकर कुल **४२ प्रकृतियो का उदय** सयोगकेवली गुणस्थान मे हो सकता है।

प्रश्न ५५६ – सयोगकेवली गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व होता है?

उत्तर – क्षीणमोह गुणस्थान मे जिन १०१ प्रकृतियो का सत्त्व हो सकता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ – ज्ञानावरण की पॉच, अन्तराय की पॉच, दर्शनावरण की चार, निद्रा और प्रचला – इन सोलह को घटा देने पर सयोगकेवली गुणस्थान में शेष **८५ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है।

प्रश्न ५५७ – अयोगकेवली गुणस्थान किसे कहते है? और वह किसे होता है?

उत्तर – मन-वचन-काय नामक योगो से रहित और केवलज्ञान-सहित परमभट्टारक अरहन्त भगवान के परिणाम को **अयोगकेवली गुणस्थान** कहते हैं।

इस गुणस्थान का काल अ इ उ ऋ लृ – इन पॉच ह्रस्व स्वरो के उच्चारण करने के बराबर है। इस गुणस्थान के द्विचरम समय मे सत्ताभूत ८५ प्रकृतियो मे से ७२ प्रकृतियो का और चरम समय मे १३ प्रकृतियो का नाश करके अरहन्त भगवान मोक्षधाम (सिद्धशिला) में जाकर सादि-अनन्त काल तक विराजमान रहते हैं।

प्रश्न ५५८ – अयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियो का बन्ध होता है?

उत्तर — सयोगकेवली गुणस्थान मे जो एकमात्र सातावेदनीय का बन्ध होता था, उसकी उसी गुणस्थान मे व्युच्छित्ति होने से इस चौदहवें अयोग-केवली गुणस्थान में **किसी भी प्रकृति का बन्ध नहीं** होता।

प्रश्न ५५९ — अयोगकेवली गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का उदय होता है?

उत्तर — सयोगकेवली गुणस्थान मे जिन ४२ प्रकृतियो का उदय होता है, उनमे से व्युच्छिन्न प्रकृतियॉ — कोई एक वेदनीय, वज्रऋषभनाराच सहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दु स्वर, प्रशस्त-विहायोगति, अप्रशस्त-विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, न्यग्रोध सस्थान, स्वाति सस्थान, कुब्जक सस्थान, वामन सस्थान, हुण्डक सस्थान, स्पर्श, रस, गध, वर्ण, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, और प्रत्येक — इन ३० प्रकृतियो को घटाने पर शेष **१२ प्रकृतियो का उदय** इस अन्तिम गुणस्थान मे होता है। वे १२ प्रकृतियाँ हैं — वेदनीय की शेष एक, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पञ्चेद्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश.कीर्ति, तीर्थङ्करप्रकृति और उच्चगोत्र।

प्रश्न ५६० — अयोगकेवली गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का सत्त्व रहता है?

उत्तर — सयोगकेवली गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान मे भी **८५ प्रकृतियो का सत्त्व** रह सकता है, परन्तु द्विचरम-समय मे इनमे से ७२ प्रकृतियाँ — शरीर की पॉच, बन्धन की पॉच, सघात की पाँच, सस्थान की छह, सहनन की छह, अङ्गोपाङ्ग की तीन, वर्ण की पाँच, गन्ध की दो, रस की पाँच, स्पर्श की आठ, स्थिर, अस्थिर, शुभ,

अशुभ, सुस्वर, दु स्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयश, अनादेय, प्रत्येक, पर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अनुदयरूप कोई एक वेदनीय, नीच गोत्र — इनका सत्त्व नष्ट होता है तथा अन्तिम समय में शेष १३ प्रकृतियाँ — एक शेष वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र — इनका सत्त्व नष्ट करके **अरहन्त भगवान् मोक्ष को पधारते हैं।**[१]

।। इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः।।

---

१. जिसप्रकार बन्धनयुक्त प्राणी बेड़ी आदि के छूट जाने पर स्वतन्त्र होकर यथेच्छ गमन करता हुआ सुखी होता है, उसी प्रकार कर्म-बन्धन का वियोग (मोक्ष) हो जाने पर आत्मा स्वाधीन होकर आत्यन्तिक ज्ञान-दर्शन व अनुपम सुख का अनुभव करता है। **(— तत्त्वार्थवार्तिक, १/४)**

जब आत्मा कर्ममल (अष्टकर्म), कलङ्क (राग-द्वेष-मोहरूपी भावकर्म) और शरीर (नोकर्म) को अपने से सर्वथा जुदा कर देता है, तब उसके जो अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञानादि गुणरूप और अव्याबाध सुखरूप सर्वथा विलक्षण अवस्था उत्पन्न होती है, उसे **मोक्ष** कहते हैं। **(— सर्वार्थसिद्धि, १/१ उत्थानिका)**

कर्मों के निर्मूल करने में समर्थ, ऐसा शुद्धात्मा की उपलब्धिरूप जीव का परिणाम, **भावमोक्ष** है और उस भावमोक्ष के निमित्त से जीव व कर्मों के प्रदेशों का निरवशेषरूप से पृथक् हो जाना, **द्रव्यमोक्ष** है। **(— पञ्चास्तिकायसंग्रह, तात्पर्यवृत्ति, १०८)**

मनुष्यगति से जीव का मोक्ष होना सम्भव है। आयु के अन्त में मुक्तजीव का शरीर कपूरवत् उड़ जाता है और वे स्वाभाविक उर्ध्वगति के कारण लोक-शिखर पर जा विराजते हैं, जहाँ वे अनन्तकाल तक अनन्त अतीन्द्रिय सुख का उपभोग करते हुए अपने चरम शरीर के आकाररूप में स्थित रहते हैं और पुन शरीर धारण करके जन्म-मरण के चक्कर में कभी नहीं पड़ते हैं। ज्ञान ही उनका शरीर होता है।

(— जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग ३, पृष्ठ ३२१)

अध्यात्मदृष्टि से नयों के भेद-प्रभेद

आचार्यों ने अध्यात्मदृष्टि से नयो का कथन किया है। **नय** के मूलभेद दो हैं – निश्चयनय और व्यवहारनय। अभेदरूप को विषय करनेवाला **निश्चयनय** है और भेदरूप को विषय करनेवाला **व्यवहारनय** है। निश्चयनय के दो भेद हैं – **शुद्धनिश्चयनय** और **अशुद्ध-निश्चयनय**। जो निरुपाधिक गुण-गुणी को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **शुद्धनिश्चयनय** कहते हैं। जैसे, जीव केवलज्ञानस्वरूप है। जो सोपाधिक गुण-गुणी को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **अशुद्ध-निश्चयनय** कहते हैं। जैसे, जीव मतिज्ञानस्वरूप है।

व्यवहारनय के भी दो भेद हैं – **सद्भूतव्यवहारनय** और **असद्भूतव्यवहारनय**। जो एक पदार्थ मे गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **सद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं। उसके भी दो भेद हैं – **उपचरित** और **अनुपचरित**। जो सोपाधिक गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **उपचरितसद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, जीव के मतिज्ञानादि गुण हैं। जो निरुपाधिक गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **अनुपचरितसद्भुतव्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, जीव के केवलज्ञानादिक गुण हैं।

जो भिन्न पदार्थों को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे असद्भूत-व्यवहारनय कहते हैं। उसके भी दो भेद हैं – उपचरित और अनुपचरित। जो सश्लेषरहित वस्तु को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **उपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, आभरणादिक मेरे हैं। जो सश्लेषसहित वस्तु को अभेदरूप ग्रहण करता है, उसे **अनुपचरित-असद्भूतव्यवहारनय** कहते हैं। जैसे, शरीर मेरा है।

– गुरुवर्य गोपालदास बरैया

'जैन सिद्धान्त' (लेख), स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ २५९

पञ्चम अध्याय

अधिगम के उपाय

(दोहा)

प्रमाण-नय-निक्षेप अरु लक्षण से सुज्ञान।
अधिगम हेतु इन्हें कहा, अन्य नहीं है जान।।

प्रश्न ५६१ – पदार्थों को जानने के कितने उपाय है?

उत्तर – पदार्थों को जानने के चार उपाय हैं – लक्षण, प्रमाण, नय, और निक्षेप।

५.१ लक्षण और लक्षणाभास

प्रश्न ५६२ – लक्षण किसे कहते हैं?[1]

उत्तर – बहुत से मिले हुए पदार्थों मे से किसी एक पदार्थ को पृथक् करनेवाले हेतु को **लक्षण** कहते हैं। जैसे – जीव का लक्षण चेतना।

प्रश्न ५६३ – लक्षण के कितने भेद हैं?

उत्तर – लक्षण के **दो** भेद हैं – आत्मभूत लक्षण, और अनात्मभूत लक्षण।

प्रश्न ५६४ – आत्मभूत लक्षण किसे कहते है?

उत्तर – जो वस्तु के स्वरूप मे मिला रहता है, उसे **आत्मभूत लक्षण** कहते हैं। जैसे – अग्नि का लक्षण उष्णपना।

प्रश्न ५६५ – अनात्मभूत लक्षण किसे कहते है?

उत्तर – जो वस्तु के स्वरूप मे नहीं मिला रहता, उसे **अनात्मभूत लक्षण** कहते हैं। जैसे – दण्डी पुरुष का लक्षण दण्ड।

---

१. जिसके द्वारा यथार्थ पदार्थ का लक्ष्य किया जाता है, उसे लक्षण कहते हैं।
(– न्यायविनिश्चय टीका, १/३/८५)

प्रश्न ५६६ — लक्षणाभास किसे कहते है?

उत्तर — सदोष लक्षण को **लक्षणाभास** कहते हैं।

प्रश्न ५६७ — लक्षणाभास के भेद अथवा लक्षण के दोष कितने है?

उत्तर — लक्षणाभास के भेद अथवा लक्षण के दोष **तीन** हैं — अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असभव।

प्रश्न ५६८ — अव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर — लक्ष्य के एकदेश मे लक्षण के रहने को **अव्याप्ति दोष** कहते हैं। जैसे — पशु का लक्षण सींग।

प्रश्न ५६९ — अतिव्याप्ति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर — लक्ष्य और अलक्ष्य दोनो मे लक्षण के रहने को **अतिव्याप्ति दोष** कहते हैं। जैसे — गाय का लक्षण सींग।

प्रश्न ५७० — असंभव दोष किसे कहते है?

उत्तर — लक्ष्य मे लक्षण की असभवता को **असंभव दोष** कहते हैं। जैसे — जीव का लक्षण अचेतनपना।

प्रश्न ५७१ — लक्ष्य किसे कहते है?

उत्तर — जिसका लक्षण किया जाता है, उसे **लक्ष्य** कहते हैं।

प्रश्न ५७२ — अलक्ष्य किसे कहते है?

उत्तर — लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थों को **अलक्ष्य** कहते हैं।

५.२ प्रमाण और उसके भेद-प्रभेद

प्रश्न ५७३ — प्रमाण किसे कहते हैं?[१]

१. स्व और अपूर्व अर्थ के व्यवसायात्मक (निश्चयात्मक) ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। (— परीक्षामुखसूत्र १/१)

उत्तर – सच्चे ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) को **प्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ५७४ – प्रमाण के कितने भेद है?

उत्तर – प्रमाण के **दो** भेद हैं – प्रत्यक्षप्रमाण और परोक्षप्रमाण।

प्रश्न ५७५ – प्रत्यक्षप्रमाण किसे कहते है?

उत्तर – जो ज्ञान, पदार्थ को स्पष्ट (विशद) जानता है, उसे **प्रत्यक्षप्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ५७६ – प्रत्यक्षप्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर – प्रत्यक्षप्रमाण के दो भेद हैं – साव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

प्रश्न ५७७ – साव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते है?

उत्तर – जो ज्ञान, इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ को एकदेश स्पष्ट जानता है, उसे **सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष** कहते हैं।[1]

प्रश्न ५७८ – पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते है?

उत्तर – जो ज्ञान, बिना किसी की सहायता के पदार्थ को स्पष्ट जानता है, उसे **पारमार्थिक प्रत्यक्ष** कहते हैं।

प्रश्न ५७९ – पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं?

उत्तर – पारमार्थिक प्रत्यक्ष के **दो** भेद हैं – विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष और सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

---

१. यहाँ परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थों की पद्धति से वर्णन किया गया है, अत इन्द्रिय और मन की सहायता से होनेवाले मतिज्ञान को भी एकदेश साव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं और प्रत्यक्षादि पर आधारित स्मृति आदि ज्ञानों को परोक्ष कहते हैं। लेकिन तत्त्वार्थसूत्र आदि सिद्धान्तग्रन्थों मे स्पष्टत इन्द्रिय-मन की सहायता से होनेवाले मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है। इसी प्रकार अध्यात्मग्रन्थों में भी आत्मा को लक्ष्य बनाकर उत्पन्न हुए मति-श्रुतज्ञान को अनुभव-प्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष तथा पर को लक्ष्य बनाकर उत्पन्न हुए मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा जाता है।

प्रश्न ५८० — विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान, रूपी पदार्थो को बिना किसी की सहायता के स्पष्ट जानता है, उसे **विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष** कहते हैं।

प्रश्न ५८१ — विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं?

उत्तर — विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के **दो** भेद हैं — अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान।

प्रश्न ५८२ — अवधिज्ञान किसे कहते है?

उत्तर — जो ज्ञान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्याद सहित रूपी पदार्थ को स्पष्ट जानता है, उसे **अवधिज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ५८३ — मनःपर्ययज्ञान किसे कहते है?

उत्तर — जो ज्ञान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादासहित दूसरे के मन मे स्थित रूपी पदार्थ को स्पष्ट जानता है, उसे **मनःपर्ययज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ५८४ — सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर — सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष, **केवलज्ञान** को कहते हैं।

प्रश्न ५८५ — केवलज्ञान किसे कहते है?

उत्तर — जो ज्ञान त्रिकालवर्ती और त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थो को युगपत् (एक साथ) स्पष्ट जानता है, उसे **केवलज्ञान** कहते हैं।

प्रश्न ५८६ — परोक्षप्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर — जो ज्ञान दूसरे की सहायता से पदार्थों को सत्य जानता है, उसे **परोक्षप्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ५८७ — परोक्षप्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर — परोक्षप्रमाण के **पाँच** भेद हैं — स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।

प्रश्न ५८८ — स्मृति किसे कहते है?

उत्तर — पहले जाने हुए या देखे हुए पदार्थ को याद करना **स्मृति** है।

प्रश्न ५८९ — प्रत्यभिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर — प्रत्यक्ष और स्मृति के विषयभूत पदार्थों मे जोड़रूप ज्ञान को **प्रत्यभिज्ञान** कहते हैं। जैसे — यह वही मनुष्य है, जिसे कल देखा था।

प्रश्न ५९० — प्रत्यभिज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर — प्रत्यभिज्ञान के अनेक भेद हैं — एकत्व प्रत्यभिज्ञान, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान आदि।

प्रश्न ५९१ — एकत्व प्रत्यभिज्ञान किसे कहते है?

उत्तर — प्रत्यक्ष और स्मृति के विषयभूत पदार्थ की एकता के सूचक जोडरूप ज्ञान को **एकत्व प्रत्यभिज्ञान** कहते हैं। जैसे — यह वही मनुष्य है, जिसे कल देखा था।

प्रश्न ५९२ — सादृश्य प्रत्यभिज्ञान किसे कहते है?

उत्तर — प्रत्यक्ष और स्मृति के विषयभूत पदार्थों की समानता के सूचक जोडरूप ज्ञान को **सादृश्य प्रत्यभिज्ञान** कहते हैं। जैसे — यह गाय, गवय (नील गाय) के सदृश है।

प्रश्न ५९३ — तर्क किसे कहते है?

उत्तर — व्याप्ति के ज्ञान को **तर्क** कहते हैं।

प्रश्न ५९४ — व्याप्ति किसे कहते है?

उत्तर — अविनाभाव सम्बन्ध को **व्याप्ति** कहते हैं।

प्रश्न ५९५ — अविनाभाव सम्बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ-जहाँ साधन (हेतु) होता है, वहाँ-वहाँ साध्य होता है और जहाँ-जहाँ साध्य नहीं होता है, वहाँ-वहाँ साधन भी नहीं होता है, यही **अविनाभाव सम्बन्ध** है। जैसे — जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं है, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं है।[१]

प्रश्न ५९६ — साधन या हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर — जो साध्य के बिना नहीं होता है, उसे **साधन या हेतु** कहते हैं। जैसे — अग्नि को जानने का साधन, धूम है।

प्रश्न ५९७ — साध्य किसे कहते है?

उत्तर — इष्ट, अबाधित और असिद्ध को **साध्य** कहते हैं।

प्रश्न ५९८ — इष्ट किसे कहते है?

उत्तर — जिसे वादी और प्रतिवादी सिद्ध करना चाहते हैं, उसे **इष्ट** कहते हैं।

प्रश्न ५९९ — अबाधित किसे कहते हैं?

उत्तर — जो प्रत्यक्षादि प्रमाणो से बाधित नहीं होता है, उसे **अबाधित** कहते हैं। जैसे — अग्नि का ठण्डापना प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है, अत अग्नि का ठण्डापना साध्य नहीं हो सकता।

प्रश्न ६०० — असिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर — जो प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध नहीं हो, उसे **असिद्ध**

---

१. **प्रश्न — अविनाभाव के कितने भेद हैं?**

उत्तर — अविनाभाव के **दो** भेद हैं — सहभावनियम और क्रमभावनियम। सहचारी और व्याप्य-व्यापकरूप पदार्थों में **सहभावनियम** होता है। जैसे — रूप और रस, रूप और पुद्गल अथवा नीम और वृक्ष। तथा पूर्वोत्तरचारी और कारण-कार्यरूप पदार्थों में **क्रमभावनियम** होता है। जैसे — रविवार और सोमवार अथवा मोक्षमार्ग और मोक्ष।

(— परीक्षामुख, ३/१६–१८)

कहते हैं अथवा जिसका पहले से निश्चय नहीं है, उसे **असिद्ध** कहते हैं।

प्रश्न ६०१ – अनुमान किसे कहते हैं?

उत्तर – साधन से साध्य के ज्ञान को **अनुमान** कहते हैं।[१]

प्रश्न ६०२ – हेत्वाभास (साधनाभास) किसे कहते हैं?

उत्तर – सदोष हेतु को **हेत्वाभास (साधनाभास)** कहते हैं।

प्रश्न ६०३ – हेत्वाभास (साधनाभास) के कितने भेद हैं?

उत्तर – हेत्वाभास (साधनाभास) के **चार** भेद हैं – असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक (व्यभिचारी) और अकिञ्चित्कर।

प्रश्न ६०४ – असिद्ध हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस हेतु के अभाव का निश्चय हो, अथवा जिसके सद्भाव में सन्देह (शक) हो, उसे **असिद्ध हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे – 'शब्द नित्य है, क्योंकि नेत्र का विषय है।' यहाँ शब्द, कर्ण का विषय होने से नेत्र का विषय नहीं हो सकता, अत 'नेत्र का विषय' हेतु असिद्ध हेत्वाभास है।

प्रश्न ६०५ – विरुद्ध हेत्वाभास किसे कहते है?

उत्तर – जिस हेतु की साध्य से विरुद्ध पदार्थ के साथ व्याप्ति होती है, उसे **विरुद्ध हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे – 'शब्द नित्य है, क्योकि परिणामी है।' यहाँ परिणामीपने की व्याप्ति अनित्य के साथ है,

---

१. **प्रश्न – अनुमान के कितने भेद हैं?**

उत्तर – अनुमान के **दो** भेद हैं – स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। जो अनुमान परोपदेश के बिना स्वयमेव ही होता है, वह **स्वार्थानुमान** है तथा जो अनुमान, परोपदेश से होता है, वह **परार्थानुमान** है। (– न्यायदीपिका, ३/§२८–२९)

नित्य के साथ नहीं है, इसलिए नित्यत्व की सिद्धि के लिए 'परिणामी' हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है।

प्रश्न ६०६ — अनैकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष — इन तीनो मे व्याप्त होता है, उसे **अनैकान्तिक हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — 'यह स्थान धूमवाला है, क्योकि यहॉ अग्नि है।' यहाँ 'अग्नि' हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष — तीनो मे व्यापक होने से अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

प्रश्न ६०७ — पक्ष किसे कहते है?

उत्तर — जहॉ साध्य सिद्ध किया जाता है, उसे **पक्ष** कहते हैं। जैसे — उक्त दृष्टान्त के अनुसार 'यह स्थान' पक्ष है।

प्रश्न ६०८ — सपक्ष किसे कहते है?

उत्तर — अन्यत्र जहॉ साध्य के सद्भाव का निश्चय होता है, उसे **सपक्ष** कहते हैं। जैसे — उक्त दृष्टान्त के अनुसार धूमयुक्त गीले ईंधन की अग्निवाला 'अन्य रसोईघर' सपक्ष है।

प्रश्न ६०९ — विपक्ष किसे कहते है?

उत्तर — जहॉ साध्य के अभाव का निश्चय होता है, उसे **विपक्ष** कहते हैं। जैसे — निर्धूम अग्नि से तपा हुआ लोहे का गोला।

प्रश्न ६१० — अकिञ्चित्कर हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जो हेतु साध्य की सिद्धि करने मे असमर्थ होता है, उसे **अकिञ्चित्कर हेत्वाभास** कहते हैं।

प्रश्न ६११ — अकिञ्चित्कर हेत्वाभास के कितने भेद हैं?

उत्तर — अकिञ्चित्कर हेत्वाभास के **दो** भेद हैं — सिद्धसाधन और बाधितविषय।

प्रश्न ६१२ — सिद्धसाधन हेत्वाभास किसे कहते है?

उत्तर — जिस हेतु का साध्य पहले से ही सिद्ध होता है, उसे **सिद्धसाधन हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — अग्नि गर्म है, क्योकि स्पर्शन इन्द्रिय से ऐसा ही प्रतीत होता है।

प्रश्न ६१३ — बाधितविषय हेत्वाभास किसे कहते है?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य में प्रत्यक्षादि प्रमाणो से बाधा आती है, उसे **बाधितविषय हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — आत्मा अचेतन है, क्योकि यह द्रव्य है।

प्रश्न ६१४ — बाधितविषय हेत्वाभास के कितने भेद है?

उत्तर — बाधितविषय हेत्वाभास के **अनेक** भेद हैं — प्रत्यक्ष-बाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, स्ववचनबाधित आदि।

प्रश्न ६१५ — प्रत्यक्षबाधित हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य मे प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधा आती है, उसे **प्रत्यक्षबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — अग्नि ठण्डी है, क्योकि यह द्रव्य है।

प्रश्न ६१६ — अनुमानबाधित हेत्वाभास किसे कहते है?

उत्तर — जिस हेतु के साध्य मे अनुमान प्रमाण से बाधा आती है, उसे **अनुमानबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे — 'घास आदि किसी कर्ता के द्वारा बनायी है, क्योंकि ये कार्य हैं।' परन्तु यहाँ इस अनुमान से बाधा आती है कि घास आदि किसी के द्वारा बनायी नहीं है, क्योकि इनको बनानेवाला कोई शरीरधारी नहीं है। जो वस्तुएँ किसी शरीरधारी के द्वारा बनायी नहीं है, वे किसी कर्ता के द्वारा बनायी नहीं है। जैसे — आकाश।

प्रश्न ६१७ — आगमबाधित हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस हेतु के साध्य मे शास्त्रप्रमाण से बाधा आती है, उसे **आगमबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे – पाप सुख को देनेवाला है, क्योंकि यह कर्म है। जो जो कर्म होते हैं, वे वे सुख के देनेवाले होते हैं। यथा – पुण्यकर्म। यहाँ शास्त्रप्रमाण से बाधा आती है, क्योकि शास्त्र मे पाप को सुख का नहीं, दु ख का देनेवाला लिखा है।

प्रश्न ६१८ – स्ववचनबाधित हेत्वाभास किसे कहते हैं?

उत्तर – जिस हेतु के साध्य में अपने वचन से ही बाधा आती है, उसे **स्ववचनबाधित हेत्वाभास** कहते हैं। जैसे – मेरी माता बाँझ (बन्ध्या) है, क्योकि पुरुष का सयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता है।

प्रश्न ६१९ – अनुमान के कितने अङ्ग है?

उत्तर – अनुमान के **पाँच** अङ्ग हैं – प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय आदि और निगमन।[१]

प्रश्न ६२० – प्रतिज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर – पक्ष मे साध्य के कहने को **प्रतिज्ञा** कहते हैं। जैसे – 'इस पर्वत पर अग्नि है।'

प्रश्न ६२१ – हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर – साध्य के अविनाभावी साधन के वचन को **हेतु** कहते हैं। जैसे – 'क्योंकि यह धूमवान है।'

---

१. परीक्षामुख आदि न्यायग्रन्थों में अनुमान के दो ही अङ्ग बताये गये हैं – प्रतिज्ञा और हेतु। वहाँ उदाहरण आदि को अनुमान का अङ्ग नहीं माना गया है, क्योंकि अन्य मतों के साथ वाद करते समय सबल हेतु ही साध्य को सिद्ध करता है, उदाहरण नहीं। उपनय और निगमन भी उसी बात को दोहराते हैं, अत उदाहरण, उपनय और निगमन को अनुमान का अङ्ग नहीं माना है, लेकिन शिष्यों को समझाते समय अथवा स्वमतवादियो के साथ वीतराग चर्चा करते समय उदाहरण आदि का प्रयोग करने में दोष नहीं है। (– **परीक्षामुखसूत्र ३/३३,४२ एवं न्यायदीपिका ३/§३६**)

प्रश्न ६२२ — उदाहरण किसे कहते हैं?

उत्तर — व्याप्ति के कथनपूर्वक दृष्टान्त के कहने को **उदाहरण** कहते हैं। जैसे — जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है, यथा — रसोईघर। तथा जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं है, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं है, यथा — तालाब।

प्रश्न ६२३ — दृष्टान्त किसे कहते है?

उत्तर — जहाँ पर साध्य और साधन का सद्भाव या असद्भाव दिखाया जाता है, उसे **दृष्टान्त** कहते हैं। जैसे — रसोईघर अथवा तालाब।

प्रश्न ६२४ — दृष्टान्त के कितने भेद हैं?

उत्तर — दृष्टान्त के दो भेद हैं — अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेक दृष्टान्त।

प्रश्न ६२५ — अन्वय दृष्टान्त किसे कहते हैं?

उत्तर — जहाँ साधन के सद्भाव मे साध्य का सद्भाव दिखाया जाता है, उसे **अन्वय दृष्टान्त** कहते हैं। जैसे — रसोईघर मे धूम का सद्भाव होने पर अग्नि का सद्भाव दिखाया गया है।

प्रश्न ६२६ — व्यतिरेक दृष्टान्त किसे कहते है?

उत्तर — जहाँ साध्य के असद्भाव मे साधन का असद्भाव दिखाया जाता है, उसे **व्यतिरेक दृष्टान्त** कहते हैं। जैसे — तालाब मे अग्नि का अभाव होने से धूम का अभाव दिखाया गया है।

प्रश्न ६२७ — उपनय किसे कहते हैं?

उत्तर — दृष्टान्त की सदृशता दिखाकर पुन पक्ष मे साधन या हेतु का उपसहार करना या दुहराना, **उपनय** है। जैसे — 'यह पर्वत भी वैसा ही धूमवान है।'

प्रश्न ६२८ — निगमन किसे कहते है?

उत्तर — साधन के उपसहार के बाद निष्कर्ष निकालकर प्रतिज्ञा का उपसंहार करना या दुहराना, **निगमन** है। जैसे — 'इसलिए यह पर्वत भी

अग्निवान् है।'

प्रश्न ६२९ — हेतु के कितने भेद हैं?

उत्तर — हेतु के तीन भेद हैं — केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी और अन्वय-व्यतिरेकी।[१]

प्रश्न ६३० — केवलान्वयी हेतु किसे कहते हैं?

उत्तर — जिस हेतु की पुष्टि मे सिर्फ अन्वयदृष्टान्त होता है अथवा जो हेतु पक्ष और सपक्ष मे रहता है तथा विपक्ष से रहित होता है, उसे **केवलान्वयी हेतु** कहते हैं। जैसे — जीव अनेकान्तस्वरूप है, क्योंकि सत्स्वरूप है, जो-जो सत्स्वरूप होता है, वह-वह अनेकान्तस्वरूप होता है, यथा — पुद्गल आदि।

प्रश्न ६३१ — केवलव्यतिरेकी हेतु किसे कहते है?

उत्तर — जिस हेतु की पुष्टि मे सिर्फ व्यतिरेकदृष्टान्त पाया जाता है अथवा जो हेतु पक्ष मे रहता है, विपक्ष मे नहीं रहता है और सपक्ष से रहित होता है, उसे **केवलव्यतिरेकी हेतु** है। जैसे — जिन्दा शरीर मे आत्मा है, क्योकि इसमे श्वासोच्छ्वास है, जहॉ-जहॉ आत्मा नहीं होता, वहाँ-वहॉ श्वासोच्छ्वास भी नहीं होता, यथा — चौकी आदि।

प्रश्न ६३२ — अन्वयव्यतिरेकी हेतु किसे कहते हैं?

---

१ हेतु के सक्षेप मे दो भेद हैं — विधिरूप और निषेधरूप। उनके भी विधि-साधक और निषेधसाधक के भेद से दो-दो भेद हैं। अर्थात् जब हेतु स्वय विधिरूप होता है और उसका साध्य भी विधिरूप होता है, तब **विधिसाधक-विधिरूप हेतु** कहलाता है। जब हेतु विधिरूप होता है, परन्तु उसका साध्य निषेधरूप होता है तो **निषेधसाधक-विधिरूप हेतु** कहलाता है। इसी प्रकार जब हेतु निषेधरूप होता है, परन्तु उसका साध्य विधिरूप होता है, तब **विधिसाधक-निषेधरूप हेतु** कहलाता है। लेकिन जब हेतु निषेधरूप होता है और उसका साध्य भी निषेधरूप होता है, तब **निषेधसाधक-निषेधरूप हेतु** कहलाता है। (— न्यायदीपिका, ३/५२,५८)

उत्तर – जिस हेतु की पुष्टि में अन्वयदृष्टान्त और व्यतिरेकदृष्टान्त दोनो होते हैं अथवा जो पक्ष और २३४ सपक्ष मे रहता है और विपक्ष मे नहीं रहता है, उसे **अन्वयव्यतिरेकी हेतु** है। जैसे – इस पर्वत पर अग्नि है, क्योकि यह धूमवाला है, जहॉं-जहाँ धूम होता है, वहॉं-वहॉं अग्नि होती है, यथा – रसोईघर। जहॉं-जहॉं अग्नि नहीं होती है, वहॉं-वहाँ धूम भी नहीं होता है, यथा – तालाब।

प्रश्न ६३३ – आगमप्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर – आप्त के वचन आदि से उत्पन्न होनेवाले पदार्थ के ज्ञान को **आगमप्रमाण** कहते हैं।

प्रश्न ६३४ – आप्त किसे कहते है?

उत्तर – परम हितोपदेशक वीतरागी सर्वज्ञदेव को **आप्त** कहते हैं।

५.३ प्रमाण का विषय

प्रश्न ६३५ – प्रमाण का विषय क्या है?[१]

---

१. सामान्य-विशेषात्मक वस्तु ही **प्रमाण का विषय** है। (**– परीक्षामुखसूत्र ४/१**)

प्रश्न – सामान्य किसे कहते है?

उत्तर – जो समस्त विशेषो में रहता हुआ भी अपने एकत्व स्वभाव को नहीं छोड़ता है, उसे **सामान्य** कहते हैं।

प्रश्न – सामान्य के कितने भेद हैं?

उत्तर – सामान्य के दो भेद है – विस्तारसामान्य और आयतसामान्य **अथवा** तिर्यक्सामान्य और उर्ध्वतासामान्य।

प्रश्न – विस्तारसामान्य या तिर्यक्सामान्य किसे कहते हैं?

उत्तर – विस्तारविशेष स्वरूप गुणों या प्रदेशों में रहनेवाला सामान्य **विस्तारसामान्य** है। अथवा एककाल मे अनेक व्यक्तियो मे रहनेवाला सामान्य **तिर्यक्सामान्य** है।

प्रश्न – आयतसामान्य या ऊर्ध्वतासामान्य किसे कहते है?

उत्तर – आयतविशेष स्वरूप क्रमभावी पर्यायो में रहनेवाला सामान्य **आयतसामान्य है अथवा** अनेक कालो मे एक व्यक्ति मे रहनेवाला सामान्य **ऊर्ध्वतासामान्य** है।

(– प्रवचनसार, तत्त्वप्रदीपिका एवं तात्पर्यवृत्ति, ९३)

उत्तर – सामान्य अथवा धर्मी और विशेष अथवा धर्म – दोनो अशो के समूहरूप वस्तु **प्रमाण का विषय** है।

प्रश्न ६३६ – विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के किसी अश अथवा भाग को **विशेष** कहते हैं।

प्रश्न ६३७ – विशेष के कितने भेद है?

उत्तर – विशेष के **दो** भेद हैं – सहभावीविशेष और क्रमभावीविशेष।[1]

प्रश्न ६३८ – सहभावीविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के सम्पूर्ण भाग और उसकी सब अवस्थाओ मे रहनेवाले विशेष को **सहभावीविशेष** अथवा **गुण** कहते हैं।

प्रश्न ६३९ – क्रमभावीविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु मे क्रम से होनेवाले विशेष को **क्रमभावीविशेष** अथवा **पर्याय** कहते हैं।

५.४ प्रमाणाभास और उसके भेद

प्रश्न ६४० – प्रमाणाभास किसे कहते है?

उत्तर – मिथ्याज्ञान को **प्रमाणाभास** कहते हैं।

प्रश्न ६४१ – प्रमाणाभास के कितने भेद है?

उत्तर – प्रमाणाभास के **तीन** भेद हैं – सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय।

प्रश्न ६४२ – सशय किसे कहते है?

उत्तर – विरुद्ध अनेक कोटियों को स्पर्श करनेवाले ज्ञान को **सशय** कहते हैं। जैसे – यह सीप है या चॉंदी?

---

१. विशेष के भी दो भेद हैं – विस्तारविशेष और आयतविशेष अर्थात् सहभावीविशेष, गुण और विस्तारविशेष एकार्थवाची है तथा क्रमभावीविशेष, पर्याय और आयतविशेष एकार्थवाची हैं। (– प्रवचनसार, तत्त्वप्रदीपिका एवं तात्पर्यवृत्ति, ९३)

प्रश्न ६४३ – विपर्यय किसे कहते है?

उत्तर – विपरीत एक कोटी का निश्चय करनेवाले ज्ञान को **विपर्यय** कहते हैं। जैसे – सीप को चॉदी जानना।

प्रश्न ६४४ – अनध्यवास किसे कहते है?

उत्तर – यह कुछ है? – ऐसे प्रतिभासरूप ज्ञान को **अनध्यवसाय** कहते हैं। जैसे – मार्ग मे चलते हुए तृण आदि का ज्ञान।

५.५ नय और उसके भेद-प्रभेद

प्रश्न ६४५ – नय किसे कहते है?

उत्तर – वस्तु के एकदेश को जाननेवाले ज्ञान को **नय** कहते हैं।

प्रश्न ६४६ – नय के कितने भेद है?[१]

उत्तर – नय के **दो** भेद हैं – निश्चयनय और व्यवहारनय (उपनय)।

प्रश्न ६४७ – निश्चयनय किसे कहते हैं?

उत्तर – वस्तु के किसी वास्तविक अश को ग्रहण करनेवाले ज्ञान को **निश्चयनय** कहते हैं। जैसे – मिट्टी के घडे को, मिट्टी का घडा कहना।

प्रश्न ६४८ – व्यवहारनय (उपनय) किसे कहते हैं?

उत्तर – किसी निमित्त के वश से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञान को **व्यवहारनय** (उपनय) कहते हैं। जैसे – मिट्टी के घड़े को, घी के रहने के निमित्त से घी का घडा कहना।

प्रश्न ६४९ – निश्चयनय के कितने भेद हैं?

उत्तर – निश्चयनय के **दो** भेद हैं – द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय।

---

१. नयो के भेद-प्रभेदो का विस्तार नयचक्र आदि ग्रन्थो से जानना चाहिए।

प्रश्न ६५० – द्रव्यार्थिकनय किसे कहते है?

उत्तर – जो नय, द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करता है, उसे **द्रव्यार्थिकनय** कहते हैं।

प्रश्न ६५१ – पर्यायार्थिकनय किसे कहते है?

उत्तर – जो नय, विशेष (गुण अथवा पर्याय) को विषय करता है, उसे **पर्यायार्थिकनय** कहते हैं।

प्रश्न ६५२ – द्रव्यार्थिकनय के कितने भेद हैं?

उत्तर – द्रव्यार्थिकनय के **तीन** भेद हैं – नैगम, सग्रह और व्यवहार।

प्रश्न ६५३ – नैगमनय किसे कहते है?

उत्तर – जो नय दो पदार्थों मे से एक को गौण और दूसरे को प्रधान करके भेद अथवा अभेद को विषय करनेवाला होता है, उसे **नैगमनय** कहते हैं। अथवा पदार्थ के सकल्प को ग्रहण करनेवाला ज्ञान **नैगमनय** है। जैसे – कोई आदमी रसोई मे चावल लेकर चुन रहा था। किसी ने उससे पूछा कि 'क्या कर रहे हो?' तब उसने कहा कि 'भात बना रहा हूँ।' यहाँ चावल और भात मे अभेदविवक्षा है। अथवा चावलो मे भात का सकल्प है।

प्रश्न ६५४ – सग्रहनय किसे कहते है?

उत्तर – जो नय अपनी जाति का विरोध नहीं करके अनेक विषयो को एकपने से ग्रहण करता है, उसे **सग्रहनय** कहते हैं। जैसे – जीव के कहने से चारो गति के सब जीवो का ग्रहण होता है।

प्रश्न ६५५ – व्यवहारनय (द्रव्यार्थिकनय का एक भेद) किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, सग्रहनय से ग्रहण किये हुए पदार्थों में विधिपूर्वक भेद करता है, उसे **व्यवहारनय (द्रव्यार्थिकनय का एक भेद)** कहते हैं। जैसे — जीव के त्रस, स्थावर आदि भेद करना।

प्रश्न ६५६ — पर्यायार्थिकनय के कितने भेद हैं?

उत्तर — पर्यायार्थिकनय के **चार** भेद हैं — ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, और एवभूत।

प्रश्न ६५७ — ऋजुसूत्रनय किसे कहते है?

उत्तर — जो नय, भूत-भविष्यत् की अपेक्षा नहीं करके वर्तमान पर्यायमात्र को ग्रहण करता है, उसे **ऋजुसूत्रनय** कहते हैं।

प्रश्न ६५८ — शब्दनय किसे कहते हैं?

उत्तर — जो नय, लिङ्ग, कारक, वचन, काल, उपसर्ग आदि के भेद से पदार्थ को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **शब्दनय** कहते हैं। जैसे — दार, भार्या, कलत्र। ये तीनो भिन्न-भिन्न लिङ्ग के शब्द एक ही स्त्री पदार्थ के वाचक हैं, अत यह नय, स्त्री पदार्थ को तीन भेदरूप ग्रहण करता है। इसी प्रकार कारक आदि के भी दृष्टान्त जानना चाहिए।

प्रश्न ६५९ — समभिरूढनय किसे कहते है?

उत्तर — जो नय, लिङ्ग आदि का भेद न होने पर भी पर्यायवाची शब्दो के भेद से पदार्थ को भेदरूप ग्रहण करता है, उसे **समभिरूढनय** कहते हैं। जैसे — इन्द्र, शक्र, पुरन्दर। यद्यपि ये तीनो एक ही लिङ्ग के पर्यायवाची शब्द देवराज के वाचक हैं, तथापि यह नय, देवराज को तीन भेदरूप ग्रहण करता है।

प्रश्न ६६० — एवंभूतनय किसे कहते है?

उत्तर — जो नय, जिस शब्द का जो क्रियारूप अर्थ है, उसी

क्रियारूप से परिणमित पदार्थ को ग्रहण करता है, उसे **एवंभूतनय** कहते हैं। जैसे – किसी व्यक्ति को पूजा करते समय ही पुजारी कहना।

प्रश्न ६६१ – व्यवहारनय (उपनय) के कितने भेद हैं?

उत्तर – व्यवहारनय (उपनय) के **तीन** भेद हैं – सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय और उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित–असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ६६२ – सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते है?

उत्तर – जो नय, एक अखण्ड द्रव्य को भेदरूप से विषय करता है, उसे **सद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे – जीव के केवलज्ञान आदि अथवा मतिज्ञान आदि गुण हैं।

प्रश्न ६६३ – असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते है?

उत्तर – जो नय, मिले हुए भिन्न पदार्थो को अभेदरूप से ग्रहण करता है, उसे **असद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे – यह शरीर मेरा है अथवा मिट्टी के घडे को घी का घडा कहना।

प्रश्न ६६४ – उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरित–असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते है?

उत्तर – जो नय, अत्यन्त भिन्न पदार्थों को अभेदरूप से ग्रहण करता है, उसे **उपचरित–असद्भूत व्यवहारनय** कहते हैं। जैसे – हाथी, घोडा, महल, मकान आदि मेरे हैं।

५.६ निक्षेप और उसके भेद

प्रश्न ६६५ – निक्षेप किसे कहते है?

उत्तर – जो युक्तिपूर्वक युक्तिसगत मार्ग से होते हुए प्रयोजनवश नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव मे पदार्थ को स्थापन करता है, उसे **निक्षेप** कहते हैं।

प्रश्न ६६६ — निक्षेप के कितने भेद है?

उत्तर — निक्षेप के **चार** भेद हैं — नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप।

प्रश्न ६६७ — नामनिक्षेप किसे कहते है?

उत्तर — जिस पदार्थ मे जो गुण नहीं है, उसको उस नाम से कहना **नामनिक्षेप** है। जैसे — किसी ने अपने लडके का नाम हाथीसिह रखा है, परन्तु उसमे हाथी और सिह दोनो के गुण नहीं हैं।

प्रश्न ६६८ — स्थापनानिक्षेप किसे कहते है?

उत्तर — साकार (तदाकार) अथवा निराकार (अतदाकार) पदार्थ मे 'यह वही है' — इस प्रकार अवधान (मनायोगपूर्वक निश्चय) करके निक्षेप करने को **स्थापनानिक्षेप** कहते हैं। जैसे — 'पार्श्वनाथ के प्रतिबिम्ब को पार्श्वनाथ कहना अथवा शतरज के मोहरों को हाथी, घोड़ा आदि कहना।

प्रश्न ६६९ — नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेप मे क्या अन्तर है?

उत्तर — नामनिक्षेप मे मूल पदार्थ की तरह सत्कार आदि की प्रवृत्ति नहीं होती, परन्तु स्थापनानिक्षेप मे वैसी प्रवृत्ति होती है। जैसे — किसी ने अपने लडके का नाम पार्श्वनाथ रख लिया तो उस लडके का सत्कार पार्श्वनाथ की तरह नहीं होता, परन्तु पार्श्वनाथ की प्रतिमा की पूजा आदि भगवान पार्श्वनाथ के समान ही होती है।

प्रश्न ६७० — द्रव्यनिक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर — आगामी पर्याय की योग्यता रखनेवाले पदार्थ को **द्रव्यनिक्षेप** कहते हैं — जैसे राजा के पुत्र को राजा कहना।

प्रश्न ६७१ — भावनिक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर — वर्तमान पर्यायसयुक्त वस्तु को **भावनिक्षेप** कहते हैं। जैसे — राज्य करते हुए पुरुष को राजा कहना।

॥ इति पञ्चमोऽध्याय: समाप्त:॥

ग्रन्थकर्त्ता का अन्तिम वक्तव्य

(दोहा)

बन्दों श्रीमहावीर जिन, वर्धमान गुणखान।
भव्य-सरोज-समूह रवि, करन सकल कल्यान॥ १॥
प्रान्त ग्वालियर में बसै, भिंड नगर शुभथान।
श्रीयुत माधवसिंह नृप, न्यायनीति गुणखान॥ २॥
अर्गलपुरवासी वणिक, जाति बरैया जान।
लछमनसुत गोपाल तँह, कीनी आय दुकान॥ ३॥
इन्द्रप्रस्थवासी सुजन, मोतीलाल सुजान।
उदासीन संसार सों खोजत निज कल्यान॥ ४॥
आये या पुर भिंड में, ढूँढ़त तत्त्वज्ञान।
तिन निमित्त लघुग्रन्थ यह, रच्यो स्व-परहित जान॥ ५॥
श्रीयुत पन्नालालजी, अति सज्जन गुणवान।
तिन निज काज विहाय सब, करी सहाय सुजान॥ ६॥
अल्पबुद्धि मम विषय यह, जिन-सिद्धांत महान।
भूल देखिके शोधियो, करियो क्षमा सुजान॥ ७॥
जो सज्जन इस ग्रन्थ को, पढ़ें नित्य धरि ध्यान।
ते श्री जिन-सिद्धांत में, करें प्रवेश सुजान॥ ८॥
विक्रम संवत् सहस इक, नौसै छ्यासठि जान।
कृष्णपक्ष श्रावण प्रथम, तिथि नवमी दिन भान॥ ९॥
जिन सिद्धांत प्रवेशिका, या दिन पूरन जान।
पढ़हु पढ़ावहु चिर जियहु, यावच्चन्द्र-सुभान॥ १०॥

॥ इति श्रीजैन-सिद्धान्त-प्रवेशिका समाप्ता॥

अर्थ — पहले दोहे में अन्तिम शासननायक का स्मरण करते हुए कहा है — मैं अनन्त गुणो की खानस्वरूप श्रीवर्द्धमान- महावीरस्वामी को नमस्कार करता हूँ। जैसे सूर्योदय के निमित्त से कमलो के समूह विकसित हो जाते है, उसी प्रकार श्रीजिनेन्द्र परमात्मा समस्त भव्य जीवों का कल्याण करने के लिए सूर्य के समान हैं ॥ १ ॥

दूसरे दोहे में लौकिक शासननायक का स्मरण करते हुए कहा है — भारतदेश में ग्वालियर प्रान्त (तत्कालीन प्रान्त) के अन्तर्गत एक भिण्ड नगर नामक शुभस्थान है। यहाँ के राजा श्रीयुत माधव सिह है, जो न्याय-नीति आदि गुणों की खान हैं ॥ २ ॥

तीसरे दोहे में लेखक ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है —अर्गलपुर (आगरा) के रहनेवाले, वरैया जाति मे उत्पन्न श्री लक्ष्मणदासजी के सुपुत्र गोपालदास (लेखक) ने व्यवसाय के उद्देश्य से भिण्ड में आकर एक दुकान खोली ॥ ३ ॥

चौथे-पाँचवे दोहे में ग्रन्थरचना के निमित्त का वर्णन किया है — इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के रहनेवाले अच्छे विचारवान पुरुष श्री मोतीलाल नामक सज्जन संसार से उदासीन होकर, अपनी आत्मा कि कल्याण की खोज मे प्रयत्नशील थे ॥ ४ ॥

तत्त्वज्ञान-प्राप्ति की ललक से खोजते-खोजते, वे यहाँ भिण्ड नगर मे आये और उन्हें तत्त्वज्ञान का बोध देने के निमित्त से लेखक ने अपना तथा पर का हित जानकर इस लघु ग्रन्थ की रचना की ॥ ५ ॥

छठवें दोहे में भिण्ड के ही एक साधर्मी का आभार प्रदर्शन किया है — यहॉ के एक साधर्मी श्रीयुत पन्नालालजी है, वे अति सज्जन और गुणवान हैं, उन्होने अपना सब काम छोड़कर इस कार्य को महत्त्वपूर्ण जानकर हमारी बहुत सहायता की ॥ ६ ॥

सातवें दोहे में लेखक अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं — मैं अल्पबुद्धिवाला हूँ और श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित सिद्धान्त अतिगहन और महान है, अतः विशेष ज्ञानीजन, इसमे कोई भूल देखें तो उसका सुधार करने की कृपा करें और हमें क्षमा करें ॥ ७ ॥

आठवें दोहे में श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के अध्ययन की प्रेरणा देते हुए वे लिखते हैं — जो सज्जन इस ग्रन्थ को निरन्तर एकाग्रचित्त होकर पढ़ेगे, उनका श्री जिनेन्द्रकथित सिद्धान्त में अच्छी तरह प्रवेश हो जायेगा ॥ ८ ॥

नौवें और दशवें दोहे में लेखक इस ग्रन्थ के पूर्ण होने की तिथि का वर्णन करते हैं — विक्रम सवत् एक हजार नौ सौ छ्यासठ १९६६ मे प्रथम श्रावण की कृष्णपक्ष नवमी के दिन यह ग्रन्थ श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका सम्पूर्ण हुआ।

अन्तिम पंक्ति में लेखक आशीर्वादस्वरूप वचन कहते हैं — जो इस ग्रन्थ को पढ़ेगा और पढ़ायेगा, वह जबतक सूरज और चॉद हैं, तबतक जियेगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त करके सिद्धशिला मे अनन्तकाल तक आत्मीक अनन्त सुख का भोग भोगेगा ॥ ९-१० ॥

॥ इति श्री जैनसिद्धान्त प्रवेशिका सम्पूर्ण ॥

धर्म की परीक्षा

जब कोई व्यक्ति एक पैसे की हॉंडी भी लेता है, तब उसको खूब ठोक-बजाकर परीक्षा करके लेता है। इसीप्रकार धर्म-साधन करनेवालो को भी चाहिए कि पहले **धर्म की परीक्षा** कर ले, बाद मे उसका साधन। जो व्यक्ति परीक्षा किये बिना ही किसी कार्य में प्रवृत्ति करते हैं, वे अन्त में अभिमत फल को प्राप्त नहीं करते।

— गुरुवर्य गोपालदास बरैया, जैनमित्र, २/६, पृष्ठ १

तीनलोक सम्बन्धी चित्रावली

चित्र क्रमाङ्क १ तीनलोक
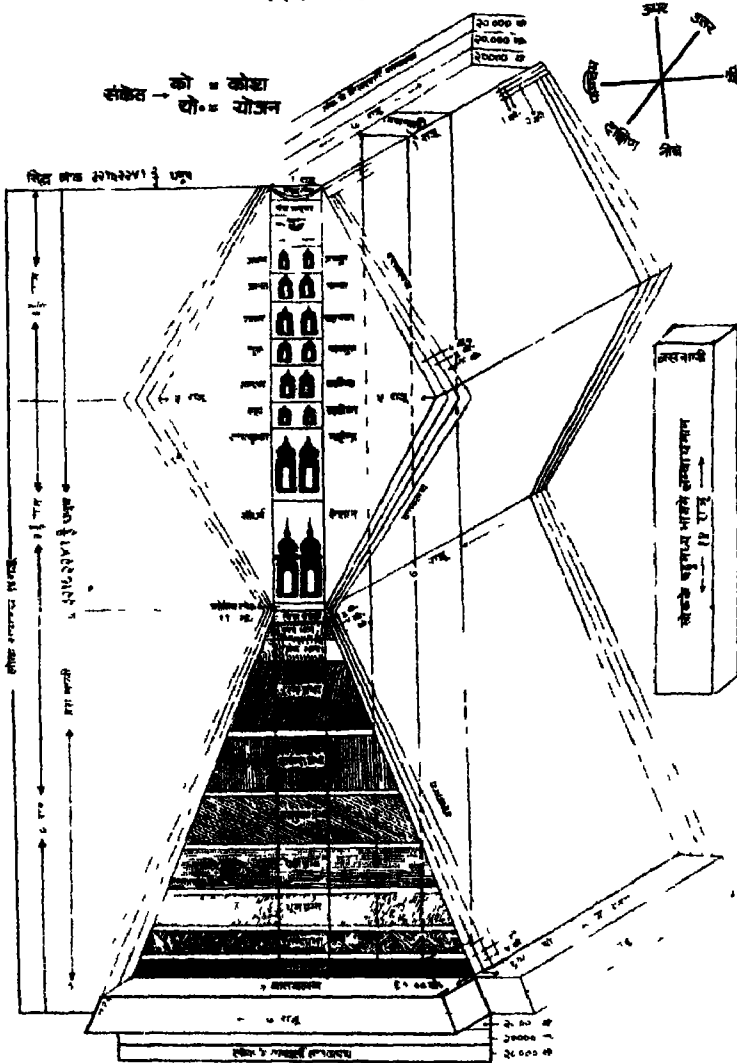
लोक के नीचे एक राजू प्रमाण नामक स्थावर लोक को चारों ओर से घेरकर अवस्थित ६०,००० योजन मोटा वातवलय।

(सन्दर्भ - अध्याय १, प्रश्न ५६)
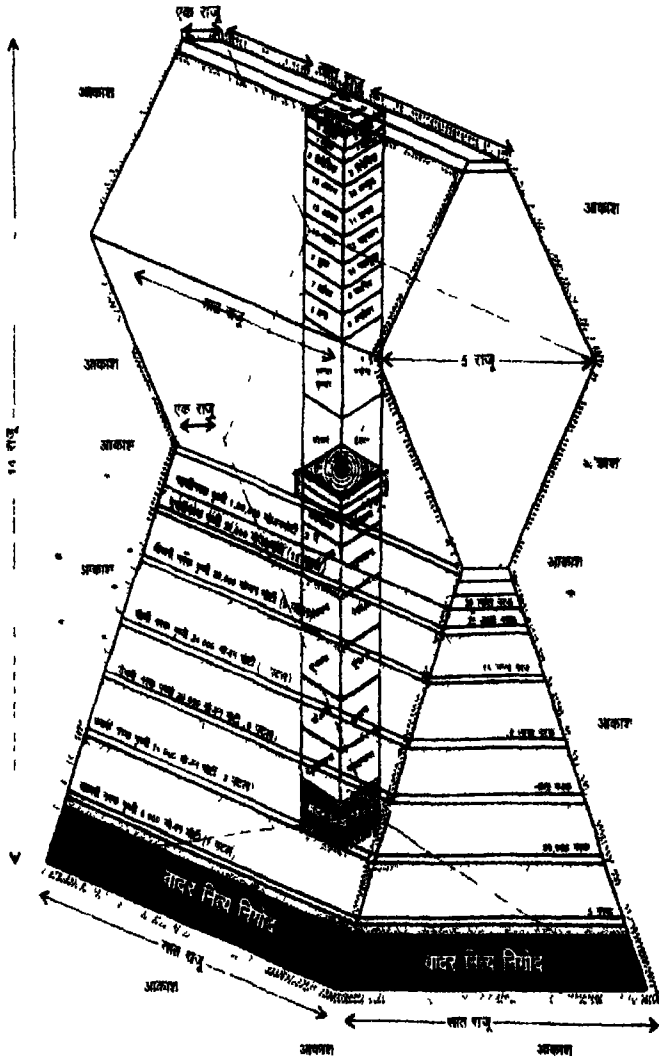
चित्र क्रमाङ्क ३

तीनलोक

तीन लोक का क्षेत्रफल - 343 घन राजू
उर्ध्व लोक 1 लाख 40 योजन कम 7 राजू ऊँचा
मध्यलोक - 1 लाख 40 योजन ऊँचा
अधोलोक 7 राजू ऊँचा
लोक - 14 राजू कुल ऊँचाई

(सन्दर्भ - अध्याय १, प्रश्न ५६)
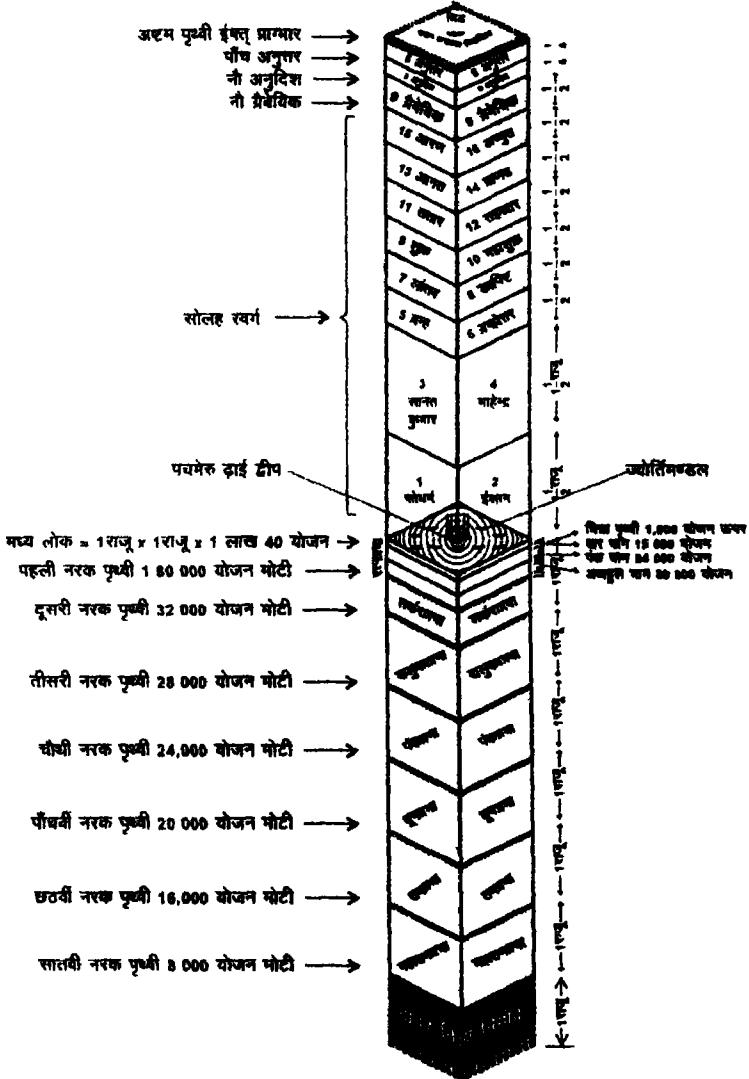
चित्र क्रमाङ्क ४

त्रसनाड़ी

1 राजू X 1 राजू X कुछ कम* 13 राजू = त्रसनाडी

* (3,21,62,241$\frac{2}{3}$ धनुष कम)

(सन्दर्भ - अध्याय १, प्रश्न ५६)

चित्र क्रमाङ्क २

जम्बूद्वीप

नोट प्रत्येक पर्वतीय कूट पर उस-उस नामवाले व्यन्तर देव व देवी निवास करते हैं।
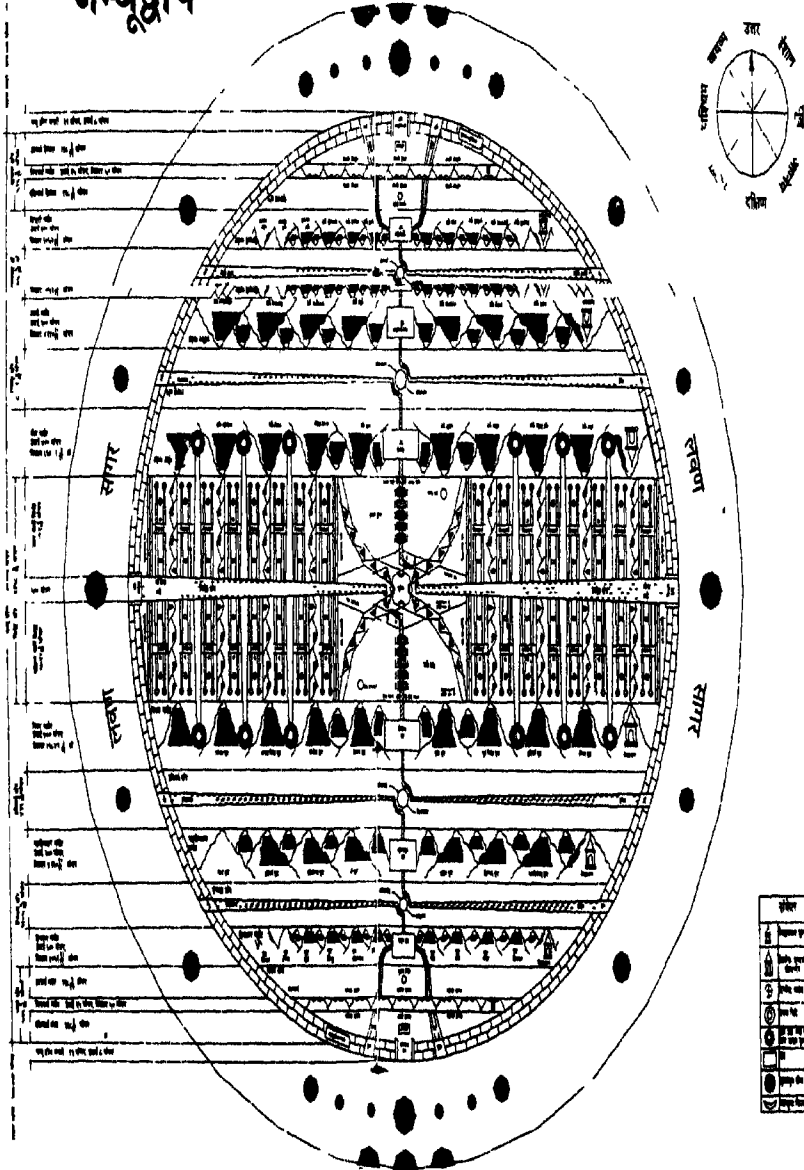
(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

चित्र क्रमाङ्क ५

ऊर्ध्वलोक

सौधर्म
ऐशान
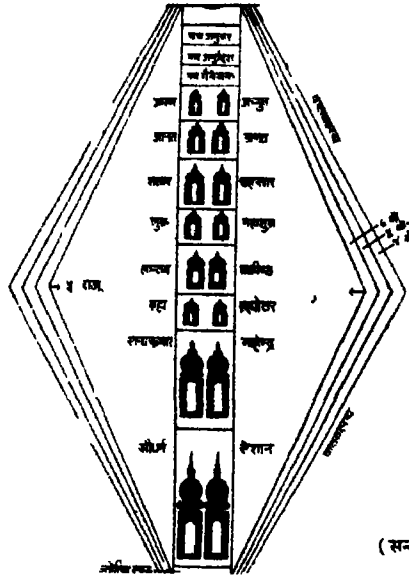
(सन्दर्भ - अध्याय ३ प्रश्न ४६१)
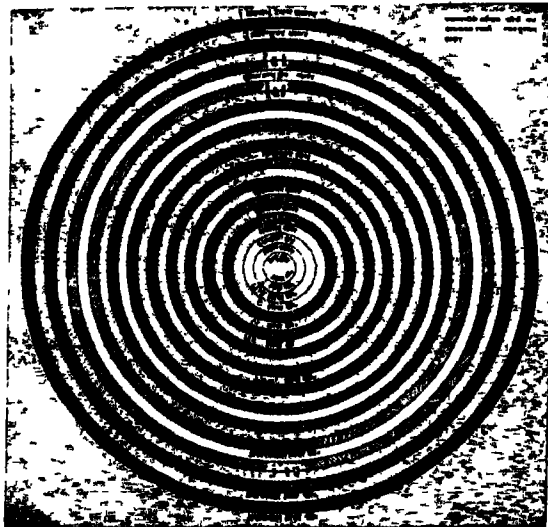
चित्र क्रमाङ्क ६

मध्यलोक

नोट — त्रस नाली में ऊपर की ओर से देखने पर ऐसा दिखाई देता है।

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७०, ४७१)

चित्र क्रमाङ्क ७ अधोलोक
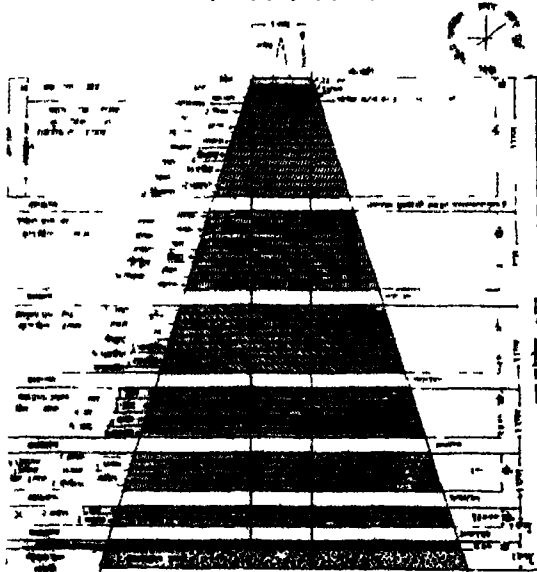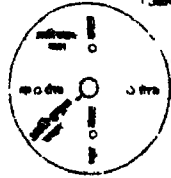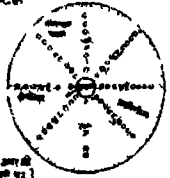
(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४५७)

चित्र क्रमाङ्क ८ भरतक्षेत्र
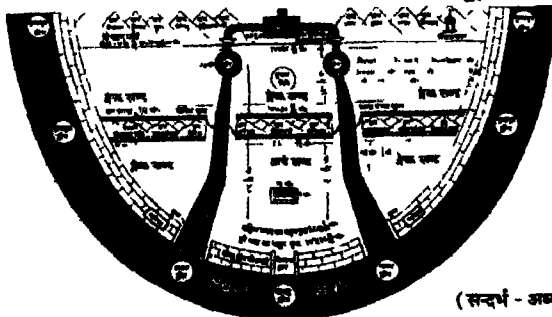
(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

चित्र क्रमाङ्क ९

सुमेरु पर्वत
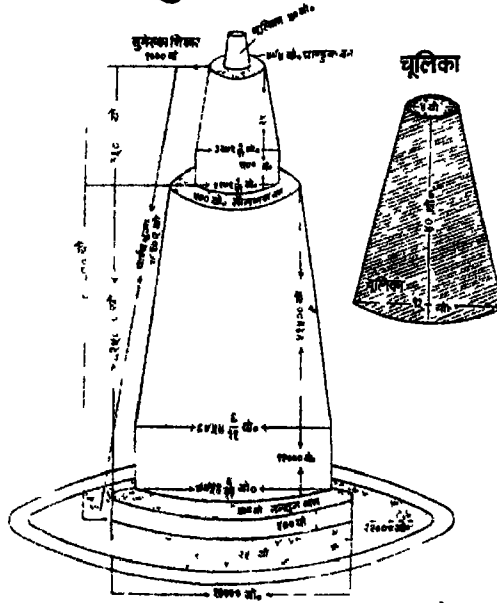
(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७० ४७१)

चित्र क्रमाङ्क १०

देवकुरु-उत्तरकुरु
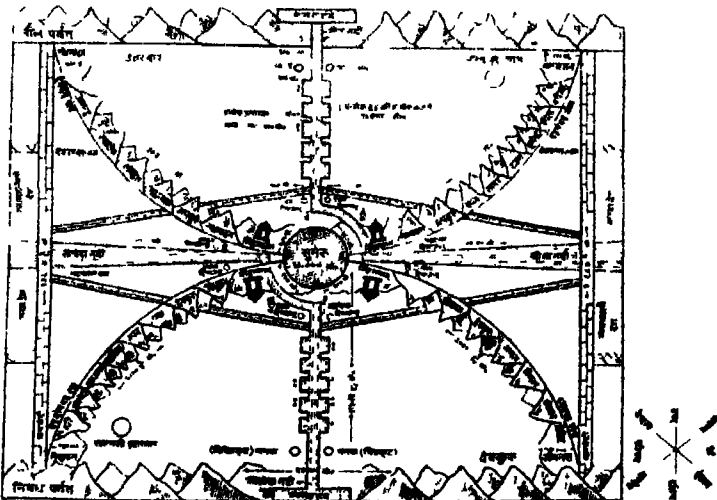
(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न .....)

चित्र क्रमाङ्क १३

मानुषोत्तरपर्वत

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

चित्र क्रमाङ्क १४

नन्दीश्वरद्वीप

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

अकारादि क्रमानुसार विषयानुक्रमणिका

चित्र क्रमाङ्क १२

अढ़ाईद्वीप : मनुष्यलोक

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

(सन्दर्भ - अध्याय ३, प्रश्न ४७१)

अकारादि क्रमानुसार विषयानुक्रमणिका